Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

UGHY- 102(N)

भारत का इतिहास

(1206 ई. से 1556 ई.तक)

खण्ड – 1

इकाई 1

तुगलक सत्ता का पतन व फिरोज तुगलक का उत्तरादायित्व

इकाई 2

तैमूर का आक्रमण

इकाई 3

बहमनी राज्य (1346 ई0 - 1518 ई0)

इकाई 4

विजय नगर की स्थापना, एवं शासन प्रणाली व
सांस्कृतिक क्रियाकलाप 1336–1526 ई0 तक)

इकाई 5

शर्की राजवंश का इतिहास एवं उपलब्धियाँ

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

UGHY-02-भारत का इतिहास (1206 ई.से 1556 ई.तक)

परामर्श समिति

अध्यक्ष	प्रो0 सीमा सिंह माननीया, कुलपति, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
	प्रो0 पी0 पी0 दुबे , कुलसचिव, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठयक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो.सन्तोषा कुमार	आचार्य, इतिहास एवं प्रभारी निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो.मुकुन्द शरण त्रिपाठी	आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,गोरखपुर
प्रो.हिमांशु चतुर्वेदी	आचार्य इतिहास विभाग दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,गोरखपुर
प्रो.हेरम्ब चतुर्वेदी	आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज
डॉ. सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

इकाई लेखक	खण्ड	इकाई	सम्पादक
डॉ. बालकेश्वर, सह आचार्य, इतिहास काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही, उत्तर प्रदेश	प्रथम खण्ड	1,2,3,4,5	प्रो.हेरम्ब चतुर्वेदी आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
श्री विवेक कुमार सिंह, सहायक आचार्य, इतिहास लाल बहादुर शास्त्री, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दीनदयाल नगर, उत्तर प्रदेश	द्वितीय खण्ड तृतीय खण्ड	1,2,3,4,5 1,2,3,4,5	
डॉ. सत्यनारायण वर्मा, सह आचार्य, इतिहास पंडित दीनदयाल उपाध्याय राजकीय बालिका महाविद्यालय, सेवापुरी, वाराणसी, उत्तर प्रदेश	चतुर्थ खण्ड	1,2,3,4,5	
मु. तुफैल खाँ, सहायक आचार्य, इतिहास गाँधी फैज–ए–आम, पी. जी. कॉलेज, शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश	पंचम खण्ड षष्ट्म खण्ड	1,2,3,4,5 1,2,3,4,5	

2022 (मुद्रित)

(c) उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज– 211021

ISBN – 978-93-94487-57-4

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस साम्रगी के किसी भी अंश को उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय प्रयागराज की ओर से विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित वर्ष–2023

मुद्रकः सिग्नस इन्फार्मेशन सल्यूशन प्रा0लि0, लोढ़ा सुप्रिमस साकी विहार रोड, अन्धेरी ईस्ट, मुम्बई

इकाई 1 तुगलक सत्ता का पतन व फिराज तुगलक का उत्तरादायित्व

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 तुगलक सत्ता के पतन की पृष्ठभूमि एवं कारण

1.3 फिरोज तुगलक का उत्तरदायित्व

1.4 सारांश

1.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.6 सहायक ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने से आपको ज्ञात होगा, कि तुगलक राजवंश की नीतियों में क्या कमियाँ थीं, जिसके कारण वे अपनी सत्ता को नहीं बनाए रख सके।

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई के पूर्व आपने पढ़ा कि दिल्ली सुल्तनत की स्थापना 1206 ई0 में कुतुब्बुद्दीन ऐबक द्वारा की गई। 1290 ई0 में खिलजी क्रान्ति के पश्चात एक नया वंश सत्ता में आया। कुछ समय बाद सन् 1320 ई0 में तुगलक वंश की स्थापना हुई। जिसके प्रमुख शासक गयासुद्दीन तुगलक, मुहम्मद तुगलक तथा फिरोज तुगलक थे। सल्तनत की सत्ता का विखण्डन मुहम्मद तुगलक के शासक से आरम्भ हो गया। अनेक छोटे–छोटे राज्य बन गए। शासकगण इस विखण्डन को रोक नहीं सके। 1351 ई0 में फिरोज तुगलक के शासक बनने के समय से विखण्डन की प्रक्रिया और तेज हो गई और कुछ समय बाद तुगलक सत्ता का पतन हो गया। तुगलक सत्ता के पतन के लिए जिम्मेदार कारणों से परिचित करना ही इस इकाई का उद्देश्य है। किसी एक कारण से किसी राजवंश का पतन नहीं होता है। इसके लिए एकाधिक कारण उत्तरदायी होते हैं। कमजोर शासकों के कार्यकाल में वे सभी कारण अस्त्र बनकर पतन या परिवर्तन सुनिश्चित करते हैं।

1.2 तुगलक सत्ता के पतन की पृष्ठभूमि एवं कारण

1. उत्तराधिकार नियम न होना
2. महत्वाकांक्षी अमीर वर्ग
3. साम्राज्य विस्तार
4. दास प्रथा
5. स्थायी सेना का अभाव
6. निरन्तर संघर्ष
7. मंगोल आक्रमण
8. तैमूर का आक्रमण

तुगलक काल में भी उत्तराधिकार के नियम का अभाव था। जैसे–सम्पूर्ण सल्तनत में विभिन्न पृष्ठभूमि के राजवंश सत्ता में आते गए, वैसे ही विभिन्न राजवंशों के शासनकाल में बिना किसी उत्तराधिकार नियम के शासक बदलते रहे। मुहम्मद तुगलक को राज्य उत्तराधिकार में मिला था। लेकिकन यह भी कहा जाता है, कि उसने अपने पिता बँगाल अभियान से लौटने के समय लकड़ी का महल बनवाकर हत्या कर दी थी। कुछ इतिहासकार इसे स्वाभाविक घटना मानते हें, कि हाथियों के टक्कर से लकड़ी का महल ध्वस्त हो गया। मुहम्मद अपने पिता को नहीं मारना चाहता था। गयासुद्दीन के मृत्यु के पश्चात 40 दिन का शोक मनाने के बाद मुहम्मद तुगलक दिल्ली आया था और विधिवत राजपद स्वीकार किया। इसी तरह मुहम्मद तुगलक के बाद फिरोज तुगलक का सुलतान बनना विवाद रहित नहीं था। मुहम्मद तुगलक अपने प्रयोगों के कारण जनता में अलोकप्रिय हो गया था। उसके कोई पुत्र नहीं था, इसलिए उलेमाउं ने फिरोज को सुल्तान बनाने का परामर्श दिया था। लेंकिन ख्वाजा जहाँ उसको सुल्तान मानने को तैयार नहीं था। बाद में समाना की जागीर देकर उसे दिल्ली से दूर कर दिया गया। कुछ समय बाद उसकी हत्या कर दी गई। फिरोज तुगलक के पश्चात नसीरूद्दीन व अन्य उत्तराधिकारी बने। उनमें योग्यता का अभाव था, परिणामस्वरूप तुगलक वंश का पतन हो गया।

तुगलक वंश और सल्तनत के पतन का दूसरा महत्वपूर्ण कारण महत्वाकांक्षी अमीर वर्ग था। यह वर्ग अत्यधिक शक्तिशाली था। मुहम्मद तुगलक जैसे शक्तिषाली सुल्तानों ने जागीरदारी प्रथा पर अंकुश लगाकर अमीरों पर नियन्त्रण रखा। लेकिन अन्य शासकों के समय उन्होंने सत्ता पर अपना नियंत्रण बनाये रखा। फिरोज तुगलक के समय उन्हें जागीर देकर संतुष्ट रखने की योजना बनाई गई। परिणाम यह हुआ कि वे

शक्तिशाली बनकर सत्ता केन्द्र बन गए। बाद के शासक इन्हीं के कारण असफल हो गए।

दिल्ली सल्तनत का सर्वाधिक विस्तार मुहम्मद तुगलक के समय हो गया था। उसने समस्त साम्राज्य पर प्रत्यक्ष शासन की नीति अपनाई थी। इस नीति से सुदूर दक्षिण के राज्यों को सवतन्त्र राज्यों की स्थापना की प्रेरणा प्राप्त हुई और सल्तनत का विगठन आरम्भ हो गया। मदुरा, विजयनगर, बहमनी राज्य उसी समय निर्मित हुए। यातायात व संचार की सुविधा के अभाव में विशाल साम्राज्य पर नियंत्रण असम्भव था। तुगलक वंश के शासन में ही सल्तनत का क्षेत्र सीमित होता गया। कोई भी सुल्तान इतना शक्तिशाली नहीं हो सका, जो समुचय उत्तर भारत को भी एकजुट रख कर शासन कर पाता। फलतः तुगलक सत्ता के साथ–साथ सल्तनत का पतन भी स्वभाविक था।

सल्तनत कालीन सामाजिक व्यवस्था में बिन्दु मुस्लिम मतभेद तो था ही, इस मतभेद को जजिया जैसे धार्मिक करो ने बढ़ाया था। लेकिन दास प्रथा की समस्या सर्वथा अनुठी थी। इसका असर सल्तनत की उततर जीविका पर पड़ना स्वाभाविक था। दास प्रारम्भ में राज्य सत्ता पर नियन्त्रण करने में कामयाब रहे। इसलिए उनकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई। फिरोज तुगलक ने दासों के लिए अलग व्यवस्था की। कहा जाता है, कि उनके शासनकाल में दासों की संख्या बढ़कर एक लाख अस्सी हजार हो गई थी। दनकी देखभाल पर अनावश्यक खर्च हुआ, जो तुगलक वंश के पतन का कारण बना।

सल्तनत काल में कुछ सुल्तानों ने स्थायी सेना बनाने का संकल्प व्यक्त किया था। बलवन व अलाउद्दीन के अतिरिक्त अन्य किसी शासक ने स्थायी सेना को महत्व नहीं दिया। सेना के सामन्ती संगठन ने सुल्तान को कमजोर कर दिया। सामंतो की सेना अपने मुखिया के प्रति निश्ठा रखती थी। सुल्तान के संकटग्रस्त होने पर सामन्त सेना के बल पर ही राज्य निर्माता बन गए। सुल्तान की यह दुर्बलता तुगलक वंश के साथ–साथ सल्तनत के भी पतन का कारण बन गई।

मूंगोल आक्रमण प्रारम्भ से ही सल्तनत के लिए संकट उत्पन्न करते रहे। बलवन्त और अलाउद्दीन के समय सर्वाधिक आक्रमण हुए। मध्य एशिया में इस्लामिक सत्ता का प्रतिरोध कर मंगोल हमेशा भारत आक्रमण की रणनीति बनाते रहे। फिरोज तुगलक के समय मंगोल आक्रमण बन्द हो गए। उसने पश्चिमी सीमा के तरफ ध्यान देना बन्द कर दिया। तब तैमूर ने आक्रमण किया तो उसे रोकने वाला कोई नहीं था।

मौहम्मद तुगलक के पश्चात किसी सुल्तान में यह क्षमता नहीं थी, कि वह पश्चिमी आक्रमण को रोक पाता। तैमूर के आक्रमण ने ही सल्तनत के पतन का बिगुल बजा दिया था।

1.3 फिरोज तुगलक का उत्तरदायित्व :

1. लम्बा शासन काल
2. धर्मान्धता
3. सैनिक गुणो का अभाव
4. दुर्बल व प्रभावहीन चरित्र

फिरोज तुगलक ने 1351 ई0 से 1388 ई0 तक शासन किया था, जिस समय वह गद्दी पर बैठा था, उसकी उम्र 44 वर्ष थी। मुहम्मद तुगलक ने उसे प्रशासन के उच्च पदों पर नियुक्त किया था। वह धार्मिक प्रङुति का विनयशील व्यक्ति था। इसलिए उलेमा वर्ग में लोकप्रिय था। लेकिन उसमें सैनिक क्षमता का अभाव था। मुहम्मद तुगलक के शासन काल में उस ने एक भी सैनिक अभियान का नेतृत्व नहीं किया था। शासक बनने पर उसने इसी नीति का पालन किया। वह कम से कम हस्तक्षेप करने और सभी वर्गों को संतुष्ट करने की नीति का पालन करता था। वह राज्य कर्मचारियों के भ्रष्टाचार को जानते हुए भी कोई कठोर कार्यवाही नहीं कर सका। 37 वर्शों के दीर्घ शासन काल से वह शान्ति तेा स्थापित करने में कामयाब रहा, लेकिन प्रशासन इतना खोखला होता गया, कि जनता के मन से उसका भय जाता रहा। इसलिए फिरोज तुगलक के दीर्घ शासनकाल को तुगलक सत्ता के लिए घातक स्वीकार किया जात है। फिरोज तुगलक की धर्मान्धता की नीति ने भी पतन में भूमिका निभाई। वह राज्य सत्ता का दुरूपयोग कर धर्मान्तरण को प्रोत्साहित करता था। ब्राह्मणों के उपर जज़िया कर और ज्वालामुखी मन्दिर पर आक्रमण जैसे कार्य उसकी धर्मान्धता को ही प्रमाणित करते हैं। वह अपने को केवल मुसिलमों का ही शासक समझता था। उसकी इस नीति ने धर्म और राजनीति में अलगाव किया। अलाउद्दीन द्वारा प्रवर्तित विचारधारा को बदल दिया। फलतः तुगलक सतता का पतन होना स्वाभाविक था। उसके लिए फिरोज तुगलक की अदुरदर्शिता पूर्णतः उत्तरदायी थी।

फिरोज जिस समय शासक बना था, उस समय सैनिक गुण वाले शासक की आवश्यकता थी। फिरोज में सैनिक गुणों की कमी थी। वह युद्ध क्षेत्र की अपेक्षा अपने महल में रहना पसन्द करता था। इसका परिणाम यह हुआ कि अमीर विलासी हो गए और सेना की शान्ति उसकी उदारता के कारण नष्ट हो गई।

फिरोज तुगलक की नीतियों का सबसे बड़ा दोष विकेन्द्रीकरण था। अयोग्य उत्तराधिकारी एक ढीले प्रशासन पर सत्ता को बचाए नहीं रख सकते थे। उसका चरित्र दुर्बल व प्रभावहीन था। उसमें प्रशासक के गुण नहीं थे। उसकी दुर्बल नीतियों में प्रशासन में भ्रष्टाचार फैला। पदो के वंशानुगत करने से सेना और प्रशासन में अयोग्य लोग शामिल हो गए। दासों ने प्रशासन में अनुचित हस्तक्षेप किया। धार्मिक प्रक्रियावादी नीति से बहुसंख्यक प्रजा असंतुष्ट हुई। उसका लम्बा शासनकाल उसका सौभाग्य था। उसकी योगयता का परिणाम नहीं था। उसकी नीतियों ने तुगलक सत्ता के पतन का मार्ग प्रशस्त किया।

1.4 सारांश– तुकालक सत्ता मध्यकालीन इतिहास में एक महत्पपूर्ण सत्ता के रूप में दृष्टिगत होती है। फिरोज तुगलक की नीतियों एवं कार्याविधियों ने इस वंश को पतन की स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया था। यही कारण है कि उसकी नीतियों में विकेन्डीकरण का सबसे बड़ा दोष माना जाता है। उसकी शासन सत्ता में अयोग्य व्याक्तियों का प्रवेश हो गया था । इसलिए इस सत्ता का पतन हो गया।

प्रश्नावली :– अभ्यासार्थ प्रश्न

---

1. तुगलक वंश के पतन के कारणों की समीक्षा कीजिए।
2. तुगलक वंश के पतन के फिरोज तुगलक की भूमिका का उल्लेख कीजिए।
3. तुगलक वंश के पतन के कारणों का वर्णन करते हुए फिरोज तुगलक के उत्तरदायित्व का निर्धारण कीजिए।

1.6 सहायक ग्रन्थ

---

1. पूर्व मध्य कालीन भारत : ए0 वी0 पाण्डेय
   : एच0 सी0 वर्मा
   : एल0 पी0 शर्मा
   : नीना शुक्ला
   : राम चौधरी दत्त, मजूमदार
   : चोपड़ा, पूरी, दत्त
2. IGNOU के नोटिस
3. ऐतिहासिंक मानचित्रावली : थपलिवाल
4. मूल ग्रन्थ (प्राथमिक श्रोत)

इकाई 2 तैमूर का आक्रमण

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 मुख्य विषय

2.2.1 कारण :

2.2.2 प्रमुख घटनाएं :

2.2.3 परिणाम :

2.3 सारांश

2.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.5 सहायक ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य अमीर वर्ग के जीवन एवं कार्यों से परिचित कराना है। उसके भारत पर आक्रमण के उद्देश्य क्या थे ? तैमूर के आक्रमण की परिस्थितियों से परिचित कराना, घटनाओं का उल्लेख एवं आक्रमण के परिणाम से अवगत कराना भी अहम लक्ष्य है। इस युद्ध ने यह जय कर दिया, कि भारत पर भाासन कौन करेगा और कौन नहीं करेगा।

2.1 प्रस्तावना

तैमूर के आक्रमण के समय तुगलक साम्राज्य दिल्ली के आस–पास तक सीमित हो गया था। उत्तराधिकार मुद्दों के कारण सुलतान की प्रतिष्ठा पूर्णतया नष्ट हो गई थी। अमीर वर्ग आपस में गुटबाजी का शिकार हो गया था। इस स्थिति में सुल्तान विदेशी आक्रमण का सामना करने में पूर्णतया असफल था। तैमूर आक्रमण से तुगलक राज्य की बची हुई प्रतिष्ठा भी समाप्त हो गई। तैमूर का आक्रमण अपने अत्याचारों नृशंस हत्याओं और लूटमार के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

2.2 मुख्य विषय : कारण :

तैमूर का जन्म 1336 ई0 में ट्रांस ऑक्सियाना के कैच नामक स्थान पर हुआ था, उसका पिता अमीर तुर्गई बर्लास तुर्की की चगताई शाखा का प्रमुख था। तैमूर के वंशज मूलतः मंगोल के थे। उन्होंने तुर्की बाहुल्य केन्द्र में निवास किया और उनके रीति रिवाज अपना लिए। इसलिए वे वर्लास तुर्क कहलाने लगे। 1369 ई0 में तैंतीस वर्ष की अवस्था में तैमूर समरकन्द के सिंहासन पर बैठा। उसने अपने विजय अभियान से एक छोटे से राज्य को विस्तृत साम्राज्य में परिवर्तित कर दिया।

उस समय दिल्ली में नसिरूद्दीन मुहम्मद का शासन था। वह अमीरों के व्यवहार के कारण वास्तविक शान्ति का उपयोग नहीं कर पा रहा था। नसुरत शाह समानान्तर सत्ता चला रहे थे। जौनपुर और गुंजरात पृथक हो चुके थे। पश्चिमी सीमा पर खिज्र खाँ का हस्तक्षेप था। इस परिसिथति में तैमूर का आक्रमण एक परिस्थितिक घटना थी। उसका विरोध करने के लिए पश्चिमोत्तर सीमा पर कोई संगठित शक्ति नहीं थी।

भारत पर अपने आक्रमण के उद्देश्य के बारे में तैमूर ने अपनी आत्मकथा मलफुजात–ए–तैमूरी में लिखा है, कि भारत पर आक्रमण करने का मेरा उद्देश्य काफिरों से युद्ध करना है। पैगम्बर की इच्छानुसार उन्हें सच्चा धर्म स्वीकार कराने के लिए कार्य करना है। देश को बहुदेव वाद और अन्ध विश्वास से मुक्त करके पवित्र करना, मंदिरों एवं मूर्तियों का उन्मूलन करना और सैनिक बनकर 'गाजी मुजाहिद' का पद प्राप्त करना है। एक दूसरे स्थान पर भी अपने आक्रमण के दो उद्देश्य बताता है :

1. काफिरों से युद्ध करना, जिससे वह धार्मिक पुण्य प्राप्त कर सके।
2. काफिरों की धन सम्पदा लूटकर इस्लाम की सेना को लाभ पहुँचाना।

जफर नाम के लेखक के अनुसार तैमूर ने मार्ग में ही भ्रष्ट लोगों तथा मूर्ति पूजकों के विनाश का निश्चय कर लिया था। यद्यपि भारत की सम्पदा का लालच तैमूर के मन में था, लेकिन उसने केवल धार्मिक पुण्य की बात कही, जिसका उलेमाओं ने समर्थन किया। दिल्ली की बिगड़ती राजनीतिक दशा का लाभ उठाकर उसने अपनी महत्वाकांछा को पूर्ण करने का प्रयास किया। चतुर कूटनीतिज्ञ होने के कारण उसने बहाना किया, कि भारत पर आक्रमण करने का उसका मुख्य उद्देश्य मूर्ति पूजा का विनाष करना है।

1398 ई0 में तैमूर के समरकन्द से भारत के अभियान पर चलाने से पहले ही उसका पौत्र, जो उस समय गजनी में था, भारत पर आक्रमण के लिए चल दिया और सुल्तान काघेरा डाल दिया। जब तैमूर अफगानिस्तान आया तभी मुसलमानों ने काफिरों

के अत्याचार के बारे में बताया। तैमूर ने वहीं से स्त्री–पुरूश को मार डालो अभियान चलाकर मार्ग में हत्या और विनाश करता हुआ पंजाब में तुलुखा के निकट तक पहुँच गया। पीर मुहम्मद ने मुल्तान जीत लिया और अपनी सेना के साथ तैमूर से मिल गया। फिर तैमूर की सेना कई स्थान जैसे दीपालपुर, सिरसा और कैथल आदि को लूटती हुई दिल्ली के निकट तक पहुँच गई। दिल्ली पहुँच कर तैमूर फिरोज तुगलक के जहाँनुमा महल में युद्ध करने से पूर्व उसने युद्ध विधियों की समस्या पर विचार किया और काफिरों को कत्ल करने का आदेश दिया। लगभग एक लाख हिन्दु मारे गए, जिसका उल्लेख तैमूर ने स्वयं किया है। विश्व इतिहास में इतनी बड़ी संख्या में निर्मम हत्या का कोई अन्य उदाहरण नहीं मिलता है। 16 दिसम्बर 1398 ई0 को सुल्तान मुहम्मद शाह तुगलक ने पराजय स्वीकार कर ली। 18 दिसम्बर तक दिल्ली पर तैमूर का अधिकार हो गया। तैमूर ने नगर को लूटने और जान से मारने का आदेश दे दिया। हजारों व्यक्ति मार डाले गए और असीमित सम्पत्ति जूट ली गई।

तैमूर ने स्वयं लिखा है, कि ''उस दिन और रात भर पन्द्रह हजार तुर्क लोग हत्या, लूट और विनाश में लगे रहे। शुक्रवार को सूर्योदय हुआ, तो मेरी सेना जो रात के समय मेरे वश में नहीं थी, नगर में प्रवेश कर हत्याएं करना, लोगों की सम्पत्ति लूटना और लोगों को बंदी बनाना शुरू कर दिया। लूट में इतना बेशुमार माल मिला, कि ऐसा कोई भी सिपाही नहीं था, जिसके पास 50 से 100 कैदी न हो। लूट में रत्न, लाल हीरे, मोती, अशर्फी, सोने–चांदी के बर्तन और कीमती कपड़े प्राप्त हुए थे। हिन्दु स्त्री के साने–चांदी के आभूषणों के हिसवे नहीं थे।''

पन्द्रह दिन दिल्ली में रहने के बाद तैमूर वापस समरकन्द जाने को तैयार हुआ। वह दिल्ली से फिरोजाबाद होता हुआ मेरठ पहुँचा। तत्पश्चात् वह हरिद्वार गया, जहाँ उसने दो हिन्दु सेनाओं को परास्त किया। इसके बाद शिवालिक पहाड़ियों के किनारे–किनारे चलते हुए नगर को जम्मू को लूटा। नगरों को जला दिया। हिन्दु पुरूशों को भेड़ों की तरह काट डाला और स्त्रियों तथा बच्चों को गुलाम बना लिया। 19 मार्च को उसने सिन्धु नदी पार किया। मार्ख छोड़ने से पूर्व उसने एक दरबार लगाया और खिज्र खाँ को मुल्तान का सूबेदार बना दिया। कुछ इतिहासकार लिखते हैं, कि उसने खिज्र खाँ को दिल्ली में अपना वायसराय नियुक्त किया था।

परिणाम : तैमूर का आक्रमण अत्यन्त विनाशकारी था। भारत को जितनी जन धन हानि इस आक्रमण में उठानी पड़ी, उतनी किसी भी युद्ध में नहीं उठानी पड़ी थी। डॉ0 आर0 सी0 मजूमदार के शब्दों में, 'हमारा देष भूमिसात था और हमारे घावों से रक्त बह रहा था। सारे भारत में दुःख और अराजकता का राज्य था। तैमूर ने उत्तर–पश्चिम

प्रान्तों, दिल्ली राजस्थान को इतनी बुरी तरह जलाया था तथा नष्ट–भ्रष्ट किया था, कि उन प्रदेशों को पुनः समृद्धि प्रबल करने में अनेक वर्ष लग गए।

2.2.2 प्रभाव :

1– जन–धन की हानि :– तैमूर एक निर्दयी एवं अत्याचारी शासक था। उसमें मानवीय भावना नहीं थी। वह जहाँ भी गया, हिंसा व उत्पात मचाया और जनता के ऊपर अत्याचार किया। पंजाब दिल्ली और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के क्षेत्र कई वर्ष तक वीरान रहें। अकाल और महामारी से लाखों लोग मारे गए। भीषण हत्याकाण्ड के कारण जल और वायु भी दूषित हो गए थे।

2– तुगलक वंश का पतन :– तैमूर के आक्रमण के प्रभाव स्वरूप तुगलक वंश का पतन हो गया। तैमूर के वापस होने के बाद तुगलक शाह नायबान का शासक बना रहा। पंजाब और मुलतान पर खिज्र खाँ का अधिकार था। साथ में तुगलक शाह की मृत्यु हो गई। इसके साथ ही तुगलक वंश समाप्त हो गया।

3– हिन्दु–मुस्लिम वैमनस्य में वृद्धि :– तैमूर ने हिन्दुओं पर असंख्य अत्याचार किए। लाखों हिन्दु मारे गए। तैमूर ने त्रशंसता पूर्वक कत्ल किया और स्त्रियों और बच्चों को समरकन्द ले गया। उसने यह घोषणा कर दी थी, कि वह इस्लाम के लिए कार्य कर रहा था, उसे हिन्दुओं के मन में जो घृणा उत्पन्न हुई उससे आपसी वैमनस्य की वृद्धि हुई।

4– आर्थिक हानि :– इस आक्रमण से भारत को अत्यधिक हानि उठानी पड़ी। भारत की अद्भुत सम्पदा को लूटकर वह मध्य एशिया चला गया। उसने नगरों एवं ग्रामीण क्षेत्रों का सर्वनाश कर दिया। इसका विनाश का प्रभाव कृषि, व्यापार और शिल्पों पर पड़ा। अनेक कला–कृतियां नष्ट हो गईं। कुछ कला–कृतियां वह अपने साथ ले गया, जिससे भारतीय कला मध्य एशिया पहुँच गई।

5– बाबर को आक्रमण के लिए प्रेरणा :– तैमूर का आक्रमण उसके वंशजों के लिए प्रेरणादायक रहा। इससे भारत पर मुगल विजय का मार्ग प्रशस्त हुआ। बाबर तैमूर का वंशज था। वह इसी आधार पर दिल्ली और पंजाब पर अपना अधिकार मानता था। इसी प्रकार तैमूर की विजय के बाबर की विजय के लिए नैतिक प्रेरणा का कार्य किया।

2.3 सारांश – तैमूर का आक्रमण तुगलक सत्ता की बची प्रतिष्ठा को भी नष्ट कर दिया था। भारत पर आक्रमण का उद्देश्य वह अपनी आत्मकथा में लिखता है कि काफिरों से युद्व करना है। देश को अन्धविश्वास से मुक्त कर

पावित्र करना था। उसके आक्रमण से अनेक क्षेत्रों में हानि हुई। जैसे हिन्दू–मुस्लिम में वैमनस्यता की बृद्वि, जन–धन की हानि आदि अनेक क्षेत्र थे।

2.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारत पर तैमूर के आक्रमण के कारणों पर प्रकाश डालिए।
2. भारत पर तैमूर के आक्रमण का वर्णन कीजिए।
3. तैमूर के आक्रमण के प्रभावों का वर्णन कीजिए।

2.5 सहायक ग्रन्थ

1. पूर्व मध्य कालीन भारत : ए0 वी0 पाण्डेय
: एच0 सी0 वर्मा
: एल0 पी0 शर्मा
: नीना शुक्ला
: राम चौधरी दत्त, मजूमदार
: चोपड़ा, पूरी, दत्त
2. IGNOU के नोटिस
3. ऐतिहासिंक मानचित्रावली : थपलिवाल
4. मूल ग्रन्थ (प्राथमिक श्रोत)

इकाई 3 बहमनी राज्य (1346 ई0 – 1518 ई0)

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 प्रमुख शासक

3.3 पतन के कारण

3.4 प्रशासन व सैन्य व्यवस्था

3.5 समाज एवं संस्कृति

3.6 सारांश

3.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.8 सहायक ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई में बहमनी राज्य के प्रमुख भाासकों का परिचय दिया गया है। विभिन्न सुल्तानों के भाासक में किस प्रकार सल्तनत मजबूत हुई। बहमनी राज्य का विघ्ज्ञटन किन परिस्थितियों में हुआ। बहमनी राज्य में प्रशासन का स्वरूप क्या था ? तत्कालीन जनजीवन और सामाजिक दशा से परिचित कराना भी इस इकाई का उद्देश्य है।

3.1 प्रस्तावना

सल्तनत की पतनशील अवस्था का श्री गणेश मुहम्मद तुगलक के समय में हो गया था। यूँ तो उसका शासनकाल सल्तनत के प्रसार का चरमोत्कर्ष बिन्दु माना जाता है। परन्तु उसी समय से ही सल्तनत के विघटन की प्रक्रिया भी आरम्भ हुई। दक्षिणी भारत मेूं दो सवतन्त्र राज्य – विजयनगर व बहमनी की स्थापना हुई। उत्तर भारत में विघ्ज्ञटन की प्रक्रिया धीमी थी। यह फिरोज तुगलक के शासनकाल में आरम्भ होकर तैमूर के आक्रमण के बाद पूर्ण हुई। जौनपुर, मालवा, गुजरात, बंगाल, उड़ीसा कामरूप में नए राज्य बने। राजपूताना के राज्य दिल्ली सुल्तानों के खिलाफ ही रहे। पतनषील दशा में मेवाड़, मारवाड़ जैसे राज्य मजबूत हो गए। इस विघटन की प्रक्रिया में निर्मित बहमनी राज्य राजनीति एवं सांस्कृतिक दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। क्योंकि इस राज्य का गठन मुसिलम अमीरों द्वारा मुस्लिम सत्ता के विरोध में किया गया था।

दक्षिण के अमीरों का विरोध मुहम्मद मुगलक के शासन में आरम्भ हुआ। इन अमीरों ने दौलताबाद को अपना केन्द्र बनाकर इस्माइल शाह को अपना नेता चुन लिया। कुछ समय बाद इस्माइल शाह संघ के दूसरे प्रमुख व्यक्ति हसन को जफर खाँ की उपाधि देकर उसे सैनिक दायित्व सौंप दिया। दौलताबाद की स्थिति सुरक्षित नहीं थी, क्योंकि गुलबर्गा, कल्याणी और बीदर पर अभी भी मुहम्मद तुगलक का अधिपत्य था। जफर खाँ ने बीदर और गुलबर्गा पर कुछ समय बाद अधिकार कर लिया। जफर खाँ ने सागर और गुलबर्गा पर कुछ समय बाद अधिकार कर लिया। दौलताबाद के निकट उसने मुहम्मद तुगलक की सेना को भी पराजित कर दिया, जिससे उसकी ख्याति चारों तरफ फैल गई। इस्माइल शाह उर्फ नासिरूद्दीन ने पद त्यागकर जफर खाँ को ही सुल्तान बना दिया। यही जफर खाँ अलाउद्दीन हसन, बहमन शाह के नाम से सिंहासन पर बैठा। पृथक बहमनी राज्य की स्थापना का श्रेय उसे ही प्रदान किया जाता है।

3.2 प्रमुख शासक –

1– अलाउद्दीन हसन बहमन शाह (1347 ई0 – 1358) : बहमनी राज्य के संस्थापक अलाउद्दीन बहमनशाह थे। उन्होंने गुलबर्गा को राजधानी बनाकर शासन आरम्भ किया था। वह दक्षिण भारत में अपने को तुगलक राज्य का उत्तराधिकारी समझता था। वह एक योग्य व कुशल प्रशासक था। उसने नासिक व गलान से लेकर कृश्णा नदी के तट तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया था। बहमनी राज्य के पूर्व में वारंगल का हिन्दु राज्य तथा दक्षिण में विजयनगर राज्य विद्यमान था। बहमनशाह अपने शासनकाल में दोनों राज्यों से संघर्षशील रहा। वह वारंगल राज्य के शासक को पूर्णतः पराजित तो नहीं कर सका। लेकिन वह उसके शासकों से खिराज बसूल करने में सफल रहा। बहमनशाह विजयनगर राज्य के खिलाफ भी अभियान चलाना चाहता था, लेकिन उसके विश्वस्त लोगों ने अभियान न चलाने का सुझाव दिया। तत्पश्चात उसने प्रशासन का संगठन किया जिससे एक अमीर वर्ग का निर्माण हुआ। उसने बहमनी राज्य को चार प्रान्तों में विभाजित किया – गुलबर्गा, दौलताबाद, बरार और बीदर दन सभी प्रान्तों में गवर्नर नियुक्त किए। उसका शासनकाल न्याय–प्रियता और उदारता के लिए जाना जाता है। लेकिन हिन्दुओं के प्रति उसकी नीतियों में असहिष्णुणा ही प्रदर्शित होती है।

2– मुहम्मदशाह प्रथम (1358 ई – 1375 ई0) : अलाउद्दीन बहमनशाह के बाद उसका पुत्र मुहम्मदशाह सुल्तान बना। उसमें भी योग्य शासक और प्रशासक के गुण थे। उसे खलीफा का औपचारिक पत्र प्राप्त हुआ था। वह प्रशासन के कार्यों की देखभाल

स्वयं करता था, जिस प्रशासनिक संगठन का निर्माण उसने किया था, वह बहुत समय बाद भी साम्राज्य का आधार बना रहा। उसने आठ मंत्रियों को नियुक्त करने की परम्परा की। वज़ीर उस सल्तनत में प्रमुख मंत्री होता था। मुहम्मदशाह का पूरा शासनकाल विजयनगर और तंलांगना कसे युद्ध करने में व्यतीत हुआ। अपनी सैनिक क्षमता कें बल पर उसने दोनो को परास्त किया। मुहम्मदशाह ने अपने शासनकाल में डकैतो के दमन के लिए अनेक उपाय किए। उसके समय में ही गुलबर्गा की मस्जिद पूरी की गई। ष्ही भारत की एक मात्र मस्जिद है, जिसमें खुला अहाता नहीं है। उसने 1361 में अपनी माँ को मक्का की यात्रा पर भेजा था, जिसके परिणामस्वरूप उसे खलीफा से मानपत्र प्रापत हुआ। फरिश्ता ने मुहम्मदशाह के चरित्र की प्रशंसा की है। लेकिन हिन्दुओं के प्रति उसकी नीति अनुदक थी। सम्भवतः अत्यधिक मद्यपान के कारण 1375 ई0 में उनकी मृत्यु हो गई।

3– मुजाहिदशाह और दाउद (1375 ई0 – 1378 ई0) : मुजाहिदशाह के संक्षिप्त शासन काल में विजय नगर और बहमनी राज्य का संघर्ष जारी रहा। सुल्तान ने तुंगभद्रा नदी के दक्षिणी राज्यों की मांग की। इसके प्रत्युत्तर में बुक्का ने हाथियों की मांग की। इस युद्ध में प्रारम्भिक सफलता सुल्तान को मिली, लेकिन बाद में सन्धि हो गई। दाउद ने षड्यन्त्र कर मुजाहिद शाह की हत्या कर दी। कुछ माह बाद ही दाउद की हत्या हो गई। तत्पश्चात् अमीरों ने हसनशाह के पौत्र मुहम्मदशाह द्वितीय की गद्दी पर बैठाया।

4– मुहम्मद शाह द्वितीय (1378 ई0 – 1397 ई0) मुहम्मदशाह द्वितीय एक शान्तिप्रिय, धार्मिक और साहित्यिक व्यक्ति था। उसने इरान के कवि हफीज को बहुत से उपहार भेजे और उसे भारत आमन्त्रित किया। यद्यपि तूफानों के भय से कभी भारत नहीं आया। मुहम्मदशाह द्वितीय की धार्मिक नीति संकीर्ण थी। उसके समय अनेक अकाल पड़े। संकट की अवधि में भी उसने मुस्लिमों को ही अधिक राहत पहुँचायी। अप्रैल 1397 में उसके मृत्यु के बाद कुठ समय के लिए गयासुद्दीन शासक हुआ।

5– फिरोजशाह (1397 ई0 – 1422 ई0) : तुर्कदास तुगाल चीन के हस्तक्षेप के कारण गयासुद्दीन भी अधिक समय तक शासन नहीं कर सका। पुनः अमीरों ने तेज दिमाग और सुगठित षरीर वाले फिरोजशाह को शासक बनाया। फरिश्ता उसे बहमनी राज्य के सल्तनत में सर्वाधिक योग्य मानता था। उसने भीमा नदी के तट पर फिरोजाबाद नामक नया शहर बसाया था। दौलताबाद के प्रसिद्ध वेदशाला का निर्माण भी उसी के समय में हुआ था। उसने अपने हरम में आठ सौ स्त्रियां रखीं थीं, जो भिन्न–भिन्न संस्कृति व समूहों से थी। वह उनसे उनकी भाषा में ही बात करता था। फिरोजशाह धार्मिक दृष्टि से उदार था। उसने अपने राज्य में ब्राह्मणों को महत्वपूर्ण

प्रशासनिक पद प्रदान किए थे। फिराजशाह के शासनकाल में भी विजयनगर और बहमनी राज्य के साथ संघर्ष जारी रहा। फिरोज ने 1398 ई0 में हरिहर को हरा दिया और रायचूर दोआब पर अधिकार कर लिया। उसने अपने मूल प्रान्त गुलबर्गा से रायचूर दोआब को पृथक कर एक नया प्रान्त बना दिया। फिरोज ने एक और सफल अभियान केरल के नरसिंह के विरूद्ध चलाया। नरसिंह ने चालीस हाथी और बहुत सा धन देकर उसके साथ समझौता कर लिया। फिरोजशाह के कार्यकाल में ही हरिहर की मृत्यु हो गई। परन्तु देवराय प्रथम ने युद्ध जारी रखा। 14121 ई0 में माहुर के गोंड गवर्नर ने फिरोज के खिलाफ विद्रोह कर लिया। वह गोंडावाना तक चला गया, लेकिन बिना विद्रोह का दमन किए वापस चला आया, क्योंकि उसे संदेह हो गया था, कि उसका भाई अहमद उसके विरूद्ध षड्यंत्र कर रहा है। 1420 ई0 में विजयनगर के शासक ने बहमनी राज्य पर आक्रमण कर दिया, जिसमें फिरोज निर्णायक रूप से पराजित हो गया। इस पराजय से वह टूट गया और एकान्तवास करने लगा। 1422 ई0 में उसकी मृत्यु हो गई। फिरोज गुलबर्ग युग के सुल्तानों में अन्तिम था। क्योंकि उसके बाद गुलबर्ग के स्थान पर बीदर बहमनी राज्य की नवीन राजधानी बन गई।

6– अहमदशाह प्रथम (1422 ई0 – 1436 ई0) : अहमदशाह ने सर्वप्रथम उस सन्त को पुरस्कृत किया जिसने उसके सुल्तान बनने की भविष्यवाणी की थी। तत्पश्चात उसने अपने मित्रों और सहयोगियों को पुरस्कृत किया। उसने विजयनगर के शासकों से पराजय का बदला लेने की योजना बनाई। उसने विजयनगर राज्य में जमकर लूटपाट की और हिन्दुओं की हत्या करवाई। मन्दिरों का विधवंश और जनता को गुलाम बनाया। उसके शासनकाल में भयंकर अकाल पड़ा। उसने सार्वजनिक रूप से पूजा आराधना की, जिसके परिणामस्वरूप वर्शा हुई और अकाल का प्रकोप भी खत्म हो गया। सूफी सन्त गेसुदराज उसके समकालीन थे और उनकी विशेष कृपा अहमदशाह पर थी। अहमदशाह के समय विदेशी अमीरों की नियुक्ति शासन और नागरिक सेवा में की गई। इन परदेशी अमीरों को आफाकी कहा जाता था। स्थानीय अमीर इन्हें शंका की दृश्टि से देखते थे। फलतः दोनों के मध्य संघर्ष आरम्भ हो गया। अहमदशाह का शासनकाल न्याय और धर्मनिष्ठा के लिए प्रसिद्ध था। उसे इतिहास में वली या सन्त अहमद कहा गया है। 1436 ई0 में उसकी मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र अलाउद्दीन अहमद सुल्तान हुआ।

7– अलाउद्दीन अहमद द्वितीय (1436 ई0 – 1458 ई0) : अलाउद्दीन भी अपने पिता के समय युद्धों में व्यस्त रहा। उसे दो बार विजयनगर राज्य से युद्ध करना पड़ा। देवराय द्वितीय ने 1443 ई0 में रायचूर दोआब पर आक्रमण कर दिया लेकिन उसके पुत्र के मृत्यु के बाद दोनो पक्षों के मध्य सन्धि हेा गई। अलाउद्दीन शासन के

कार्यों से उदासीन होकर विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करने लगा। इस बीच दक्खिनी और अफाकी अमीरों की प्रतिस्पर्धा पुनः उग्र रूप में प्रतीत होने लगी। सुल्तान समय रहते कोई निर्णय नहीं ले सका। 1453 ई0 में उसके भी मृत्यु की खबर फैल गई। जिससे तेलांगना और बीदर में विद्रोह की स्थिति उत्पन्न हो गई। इसी समय अफाकी नेता महमूद गाँवा ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। बाद की बहमनी राजनीति में महमूद गाँवा का महत्वपूर्ण स्थान है। 1458 ई0 में अलाउद्दीन की मृत्यु हो गई।

8– हुमायूँ (1458 ई0 – 1461 ई0) : वह एक क्रूर और बर्वर शासक था। उसकी नीतियों के कारण ही उसे जालिम की उपाधि दी गई है। उसने अपने भाई हसन खान को अंधा करवा दिया था। हुमायूँ ने अफाकी अमीरों का पक्ष लिया, यद्यपि दक्खिनी अमीरों को पूरी तरह शासकीय पदों से अलग नहीं किया। उसके शासनकाल में तेलंगाना में दो विद्रोह हुए। जिसका दमन उसने बहुत ही क्रूरता से किया। 1461 ई0 में एक कर्मचारी ने ही उसका वध कर दिया।

9– मुहम्मद तृतीय (1463 ई0 – 1482 ई0) : हुमायूँ के मृत्यु के पश्चात निजामशाह शासक बना था, लेकिन वह भी अधिक दिन शासन नहीं कर सका। 1463 ई0 में मुहम्मद तृतीय की शासन बनने के समय उसकी उम्र 9 वर्ष थी। इसलिए उसने वजीर प्रधानमंत्री महमूद गाँवा की देख–रेख में शिक्षा की श्रेष्ठ व्यवस्था की। उसने भी महमूद गाँवा को पूर्ण विश्वास और शक्ति प्रदान की। महमूद ने पूर्ण निष्ठा के साथ राज्य की सेवा की। उसने बहुमनी राज्य को नई जीवन शक्ति प्रदान की। मुहम्मद तृतीय के शासनकाल का इतिहास महमूद गाँवा के सफल सैनिक अभियानों व प्रशासन का इतिहास है।

10– महमूद गाँवा : महमूद गाँवा फारस का निवासी था। 45 वर्ष की आयु में वह दक्षिण भारत में व्यापार के लिए आया था। सुल्तान अलाउद्दीन द्वितीय ने उसकी योग्यता से प्रभावित होकर उसे अपने दरबार में अमीर बना लिया था। वह अफाकी दल का नेता था। किन्तु उसने उदारता की नीति अपनाई और दक्खिनी अमीरों को भी संतुष्ठ रखा। गवाँ में श्रेष्ठ प्रशासक के गुण विद्यमान थे। उसे बहमानी राज्य की सीमाओं व समस्याओं का ज्ञान था। उसने ने केवल समस्याओं का समाधान किया। वरन् बहमनी राज्य की प्रतिष्ठा को चरमोर्त्स पर पहुँचा दिया। सबसे पहले उसने मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी को पराजित किया। उसने कूटनीति और कौशल से मालवा में शान्ति स्थापित की। इसके बाद उसने कोंकण और गोवा पर विजय प्रापत की। उसने उड़ीसा पर भी बहमानी सत्ता स्थापित की और राजमुन्दरी तक के क्षेत्रों को अपने प्रभाव में ले लिया। विजयनगर के राजा की पराजय के बाद तो महमूद गाँवा की प्रतिष्ठा

सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गई। महमूद गाँवा ने प्रशासन के क्षेत्र में भी अपने कौशल का प्रदर्शन किया। उसने अपने राज्य को आठ प्रान्तों में विभाजित किया तथा तरफदारों का अधिकार कम कर दिया। इसका उद्देश्य विद्रोह की सम्भावना को समाप्त करना था। उसने खालसा भूमि का विस्तार किया, जिससे राज्य की आय में वृद्धि हुई। प्रत्येक प्रान्त में किलेदार की नियुक्ति की गई। कृषि–भूमि की पैदाइश कराई और लगान की राशि तक को संगत बनाया। किसानों की हितों की रक्षा के लिए उसने अनेक उपाय किए। सामान्य जनता की भलाई के लिए शिक्षा को प्रोत्साहित किया। उसने बीदर में एक महाविद्यालय बनाया था और अपनी सम्पूर्ण धनराशि इसे दान कर दी थी। वह पुस्तकों का अधिक शौकीन था। उसके पुसतकालय में 3000 पुस्तकें इरान, तुर्क और मिश्र के विद्वानों से वह पत्राचार करता था, लेकिन धार्मिक मामलों में वह असहिष्णु था। उसने हिन्दुओं पर अनेक अत्याचार किए। उसकी लोकप्रियता से भयभीत होकर दक्खिनी अमीरों ने उसके विरूद्ध षड्यंत्र रचा और एक जाली पत्र लिखकर सुल्तान को विश्वास दिलाया कि महमूद गावाँ देशद्रोही है। सुलतान ने उसके वध की आज्ञा दे दी। इस प्रकार बहमनी राज्य के श्रेष्ठ सेवक का अन्त हो गया। उसकी मृत्यु से ही बहमनी राज्य के पतन की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। मुहममद तृतीय को जब सत्यता का पता चला, तब तक बहुत देर हो चुकी थी। भय और पश्चाताप के कारण 1482 ई0 में उसकी मृत्यु हो गई।

11. महमूदशाह (1482 ई0 – 1518 ई0) : महमूदशाह 12 वर्ष की उम्र में सुल्तान बना। उसके ऊपर मलिक हसन का नियंत्रण था। मलिक हसन ने ही षड्यंत्र कर महमूद गावाँ को मृत्युदण्ड दिलाया था। परिणाम यह हुआ कि सल्तनत के भीतर अमीरों का टकराव बढ़ गया और जगह–जगह विद्रोह होने लगे। 1490 ई0 तक बहमनी राज्य 5 सवतंत्र राज्यों में विभक्त हो गया – अहमद नगर, बीजापुर, बरार, गुलकुन्डा व बीदर।

12– अन्य शासक (1515 ई0 – 1527 ई0) : 1518 ई0 में महमूदषाह की मृत्यु के बाद उसके चार पुत्र कुछ समय के शासक बनते रहे। 1527 ई0 में अनितम शासक खलीमुललाह के बीजापुर भाग जाने से बहमनी राज्य औपचारिक श्प से समाप्त हो गया।

3.3 बहमनी राज्य के पतन के कारण :

ब्हमनी राज्य का अस्तित्व 179 वर्षों तमक रहा। यद्वपि प्रभावशाली ढ़ंग से इसकी सत्ता 140 वर्ष तक रही थी। इस राजवंश के 18 सुल्तान हुए। इनमें से कुछ सुलतान ही योग्य तथा शक्तिशाली थी। इनमें से पाँच सुल्तानों की हत्या कर दी गई

थी। दो को अंधा किया गया था व दो अतिशय मद्यपान से मर गए और तीन को अपदस्थ किया गया था। साधारणतः सुल्तानों का नैतिक स्तर निम्न था। वे भोग विलास में लिप्त रहे और उनका दरबार षड्यंत्रों तथा कुचकों का केन्द्र बना रहा। इन कुचकों का मूल कारण दरबार ने विदेशियों तााि स्थानीय दक्खिनी अमीरों के दो दल थे। इनका आत्मघाती शत्रुता तथा प्रतिद्वंदिता बहमनी राज्य के पतन का मुख्य कारण थी। इसके कारण राज्य में सिरिता स्थापित नहीं हो सकी। कुछ उपवादों को छोड़कर बहमनी राज्य का सम्पूर्ण काल युद्धों का काल था। इन निरन्तर युद्धों ने राज्य को दुर्बल कर दिया। सामन्तवादी प्रणाली के कारण राज्य में विघटन कारी प्रवृत्तियाँ सदैव बलवती रहती थी। केवल रूाक्तिशाली सुलतान ही अमीरों पर नियन्त्रण रखने में सफल हुए थे। उनके कारण महमूद गावा की केन्द्रीयकरण की नीति असफल हो गई थी और उसकी हत्या करा दी गई। बहमनी राज्य की सबसे बड़ी दुर्बलता उसकी धार्मिक अत्याचारों की नीति थी। फरिश्ता ने हर्शतिरेक में विशाल पैमाने पर हिन्दुओं की हत्याओं का वर्णन किया है। उसमें अतिश्योक्ति हो सकती है, लेकिन वह धर्मान्धता का चित्र प्रस्तुत करते हैं। यह उललेखनीय है, कि जब बहमनी साम्राज्य का विघटन हो रहा था, उस समय सुलतान महमूदशाह ने स्वतंत्र गवर्नरों के समक्ष यह प्रसताव रखा कि वर्ष में एक बार वे सब विजयनगर के विरूद्ध जेहाद के लिए एकत्रित हुआ करें। वास्तव में इन दो साम्राज्यों के निरन्तर युद्धों से दोनों का विनाश हुआ।

3.4 प्रशासन एवं सैन्य व्यवस्था :

1– .सुल्तान : बहमनी राज्य में सुल्तान की सत्ता निरंकुश थी। यद्यपि सामन रूप से ज्येष्ठ पुत्र को उत्तराधिकारी नियुक्त किया जाता था, तथापि उत्तराधिकारी का कोई नियम नहीं था। अल्पव्यस्क सुल्तान के लिए संरक्षक परिषद की स्थापना की जाती थी। जिसकी नियुक्ति सुलतान अपने मृत्यु से पूर्व कर देते थे। राजमाता को संरक्षक बनाया जाने का भी उदाहरण प्राप्त होता है। राजधर्म था और सुल्तानों ने इस्लामी नियमों से शासन व्यवस्था स्थापित की थी। इस व्यवस्था में हिन्दुओं को कोई अधिकार नहीं थे। 1487 ई0 और 1495 ई0 में राज्य मुें भीषण अकाल पड़ा। सुल्तान महमूद द्वितीय ने खद्यान्न की व्यवस्था केवल मुसलमानों के लिए ही की थी। महमूद गाँवा ने शिक्षा के लिए बहुत कार्य किया, लेकिन वह केवल मुसलमानों के लिए ही थे। संक्षेप में राज्य का स्वरूप इस्लामी था और धार्मिक अत्याचार बहमनी इतिहास की मुख्य विशेषता था।

2– अमीर : बहमनी राज्य का संगठन सामन्तवादी प्रणाली पर था। प्रारम्भ में चार प्रान्त या तरफा थे – दौलताबाद, बरार, बीदर और गुलबर्गा थे। दौलताबाद के प्रान्तपति या तरफदार को मसन्द–ए–आली, बरार का मजलिस–ए–आली, बीदर का आजम–ए–हुमायूँ और गुलबर्गा का मालिक–नायक कहलाते थे। तरफदारों की अपनी सेना होती थी। इन प्रान्तपतियों की शक्ति दुर्बल करने के लिए महमूद गाँवा ने साम्राज्य को आठ प्रानतों में विभाजित किया था और सैनिक निरीक्षण की प्रणाली आरम्भ की थी। उसने उनके हिसाब किताब की जांच भी आरम्भ की थी। लेकिन वह इस सामन्तवादी प्रणाली को दुर्बल नहीं कर सका।

इस सामन्तवाद की दूसरी विशेषता इसका प्रजातीय तथा धार्मिक संघर्ष था। समस्त सामंत वर्ग दो भागों में विभाजित था – विदेशी या अफाकी, दक्खिनी या गरीबों। गरीबों के अन्तर्गत स्थानीय मुस्लिम वर्ग था, जो काफी समय से दक्षिण में बस गया था। वे प्रायः सुन्नी इस्लाम के अनुयायी थे। मुजाहिद के समय से विदेशियों को आकर्षित करने तथा उन्हें उच्च पदों पर नियुक्त करने की नीति को प्रमुखता दी गई। ये विदेशी फारस, तुर्की, मध्य एशिया, अरब तथा अफगानिस्तान के साहसी शासक थे। ये विदेशी मुसलमान मुख्य रूप से सिया इस्लाम के अनुयायी थे। कुछ अबीसीनिया के मुसल्मान भी थे। लेकिन वे सुन्नी थे और दक्खिनियों का साथ देते थे। इन दोनों दलों की पृथक सत्ता थी और इनकी प्रतिद्वन्दिता का प्रभाव राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन पर पड़ा।

3– मंत्री : प्रशासन के संगठन का कार्य सबसे पहले सुलतान मुहम्मद प्रथम के काल में हुआ था और यह प्रशासन व्यवस्था उसी अवस्था में पूरे बहमनी काल में चलती रही। सुल्तान के आठ मंत्रियों को नियुक्त किया गया था, जो इस प्रकार थे :–

1. वकील–ए–सल्तनत या सल्तनत का नायाब।
2. वकील–ए–कुल या प्रधानमंत्री जो अन्य मंत्रियों का नीरीक्षण करता था।
3. अमीर–ए–जुमला या वित मंत्री।
4. वजीर–ए–असरफ या विदेश मंत्री।
5. नाजिर– सहायक या वित मंत्री।
6. पेशवा–जो वकील–ए–सल्तनत का सहायक था।
7. कोतवाल– नगर का मुख्य पुलिस अधिकारी था।
8. सद्र–ए–जहाँ–मुख्य न्यायाधीश तथा धर्म व दान संबंधी विभाग का मंत्री।

सुल्तान के महल तथा दरबार के सुरक्षा के लिए विशेष अंगरक्षक सैनिक दल था। जिसे शरखेल कहा जाता था। इसमें 200 अधिकारी तथा 4000 सैनिक थे। यह

चार भागों या नौबत में विभाजित था, इसका मुख्य अधिकारी सर–ए–नौबत होता था। इस पद पर सुलतान किसी उच्च पदस्त और विश्वस्त अमीर को नियुक्त करते थे। सुल्तान की व्यक्तिगत सेना का मुख्य अधिकारी साख–ए–खेल होता था। मुहम्मद प्रथम के काल में ही सबसे पहले बारूद का प्रयोग हुआ था।

3.5 समाज एवं संस्कृति :

समाज दो भागों में विभाजित था – प्रथम हिन्दु जों कृषक, शिल्पकार, व्यापारी आदि थे तथा दूसरा मुस्लिम जो मुख्य रूप से सैनिक और राज्य अधिकारी थे। राज्य में हिन्दुओं पर अत्याचार किए जाते थे। आर्थिक दृष्टि से उनकी दशा दयनीय थी और मुस्लिम वर्ग की अवस्था अच्छी थी, विशेष रूप से अधिकारी वर्ग वैभव सम्पन्न था और विलासिता से जीवन यापन करता था। यद्यपि कुछ भिन्न स्थानों पर अपरिहार्य कारणों से हिन्दुओं को रखा जाता था। किन्तु उनकी दशा भी दयनीय थी। 1468 ई0 में रूसी यात्री निकितिन ने बीदर की यात्रा की थी। वह लिखता है, कि ग्रामीण लोगों की दशा अत्यन्त दयनीय है और अमीर तथा सरदार लोग अत्यन्त धनी हैं और विलासिता में डूबे रहते हैं। उनका यह सवभाव है, कि वह चांदी के वाहनों पर निकलते हैं। पचास स्वर्णातंकृत घोड़े उनकी सवारी के आगे तथा तीन सौ अश्वारोही, पाँच सौ पदाति तथा दस मशाल वाले तथा दस गायक पीछे चलते हैं।

राज्य गैर मुस्लिमों को विभिनन प्रकार से इस्लाम धर्म को स्वीकार करने के लिए बाध्य करता था। ऐसा प्रतीत होता है, कि निकोलो कोन्टी के समान निकितिन को भी इसाई धर्म त्याग कर इस्लाम धर्म को स्वीकार करना पड़ा था। एक स्थान पर कहता है, कि ''अब रूस के मेरे इसाई भाईयों, तुम में से अगर कोई भी हिन्दुस्तान जताना चाहे तो उसे अपना धर्म रूस में छोड़ जाना चाहिए, इस्लाम को स्वीकार करना चाहिए और उसके बाद हिन्दुस्तान जाना चाहिए।

3.6 सारांश– दक्षिण भारण में बहमनी राज्य की स्थापना हुई। इस वंश के अनेक महत्वपूर्ण शासकों ने अपनी नीतियों एवं कार्यप्रणायी से इस वंश का स्थापित किया। बहतनी राज्य में सुल्तान की सत निरंकुश थी । तथा संगठन सामान्तवादी प्रणाली पर आधरित था। राज्स का स्वरूप इस्लामी था। धार्मिक अत्याचार बहमनी इतिहास की विशेषता थी।

3.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. बहमनी राज्य के उत्थान एवं पतन का वर्णन कीजिए।
2. बहमनी शासकों में महमूद गावा के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।
3. बहमनी शासन एवं सैन्य व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।
4. बहमनी समाज एवं संस्कृति पर निबन्ध लिखिए।
5. बहमनी राज्य के पतन के कारणों की समीक्षा कीजिए।

3.8 सहायक ग्रन्थ

दिल्ली सल्तनत : डॉ0 नीना शुक्ला

ए0 वी0 पाण्डेय

एल0 पी0 शर्मा

इकाई 4 विजय नगर राज्य की स्थापना, शासन प्रणाली व सांस्कृतिक क्रिया कलाप (1336–1526 तक)

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 प्रमुख वंश एवं उनके शासक

4.3 विजयनगर की शासन व्यवस्था

4.4 सांस्कृतिक उपलब्धियाँ

4.5 पतन के कारण

4.6 सारांश

4.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.8 सहायक ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको विजयनगर राज्य के विभिन्न पक्षों से परिचित कराना है। सर्वप्रथम विजयनगर के प्रमुख राजवंशों एवं राजाओं का परिचय दिया गया है। विजयनगर की शासन व्यवस्था का परिचय देना सांस्कृतिक उपलब्धियों का लेखा–जोखा प्रस्तुत करना व विजयनगर के पतन के कारणों का उल्लेख करना इस इकाई का उद्देश्य है।

4.1 प्रस्तावना

सल्तनत काल में विजयनगर की स्थापना एक महत्वपूर्ण घटना थी। यह हिन्दू नवोत्थान का प्रतीक था। दक्षिण भारत में तुगलक सुल्तानों के अभियान के कारण नयी सांस्कृतिक एवं धार्मिक हलचल आई। 1336 ई0 में हरिहर और बुक्का नामक दो भाइयों ने इस राज्य की स्थापना की। यह राज्य विल्लौर से लेकर धारवार और बादामी तक फैला था। विजयनगर और बहमनी राज्य सदैव संघर्षरत रहे। विजयनगर राज्य में संगम सालुव और तुलुव नाम के तीन राजवंश सत्ता में आए। 1565 ई0 में जालीकोटा के युद्ध तक विजयनगर बना रहा। उसके बाद अहमद नगर, बीजापुर और गोलकुन्डा राज्य

अस्तित्व में आए। इस युद्ध ने विजय नगर के शान्ति और प्रतिष्ठा को सदैव कि लिए समाप्त कर दिया।

4.2 प्रमुख वंश व शासक

1. संगम वंश (1336 ई – 1485 ई0)
   - अ. हरिहर प्रथम 1336 ई0 – 1356 ई0
   - ब. बुक्का प्रथम 1356 ई0 – 1377 ई0
   - स. हरिहर द्वितीय 1377 ई0 – 1404 ई0
   - द. देवराय प्रथम 1404 ई0 – 1422 ई0
   - य. देवराय द्वितीय 1422 ई0 – 1446 ई0
   - र. मल्लिकार्जुन 1446 ई0 – 1465 ई0
   - ल. विरूपाक्ष 1465 ई0 – 1485 ई0
2. सालुव वंश (1485 ई0 – 1506 ई0)
   - अ. नरसिंह सालुव 1485 ई0 – 1490 ई0
   - ब. नरसा नायक 1490 ई0 – 1506 ई0
3. तुलुव वंश
   - अ. वीर नरसिंह 1506 ई0 – 1509 ई0
   - ब. कृष्ण देव राय 1509 ई0 – 1529 ई0
   - स. अचयुतदेव 1529 ई0 – 1542 ई0
   - द. रामराय 1565 ई0 तक

कृष्ण देव राय 1509 ई – 1529 ई0 : 1509 में वीर नरसिंह की मृत्यु के पश्चात उसका भाई कृष्ण देव राय सम्राट हुआ। कृष्ण देव राय विजय नगर के सम्राटों में महानतम सम्राट था। इतना ही नहीं भारतीय इतिहास के महानतम सम्राटों में उसका स्थान था। वह असाधारण सैनिक प्रतिभा सपन्न सेनानायक तथा लोकप्रिय कुशल प्रशासक था। उसने समस्त युद्धों में विजय प्राप्त की और उसके शासन काल में विजय नगर साम्राज्य समृद्धि के उच्च शिखर पर पहुँच गया था। यह नगर साम्राज्य का स्वर्ण युग था।

राज्यारोहण के समय कृष्ण देव राय के समक्ष समस्याएँ थीं। सामन्तों का एक वर्ग सालुव वंश का समर्थक था तााि उसके विरूद्ध षड्यंत्र कर रहा था। अनेक सामँत स्वतंत्र शासकों की भांति व्यवहार कर रहे थे। इनमें उम्मतूर का सामंत प्रमुख था।

उड़ीसा का गजपति नरेश विजय नगर साम्राज्य के पूर्वी प्रदेशों पर कब्जा किए हुए था। उत्तर में बहमनी राज्य के उत्तराधिकारी राज्यों में बीजापूर की साम्राज्यवादी नीतियों का लक्ष्य विजयनगर था। पश्चिमी तट पर पुर्तगाली अपने सत्ता का विस्तार कर रहे थे। कृष्ण देव राय ने इन सभी समस्याओं को हल करने में सफलता प्राप्त की और विजयनगर साम्राज्य को दृढ़ता और सुरक्षा प्रदान की।

प्रशासन

प्रान्तीय शासन : साम्राज्य राज्य या मंडलों में विभाजित था। इन प्रान्तों या मण्डलों को जिलों में विभाजित किया जाता था। जिन्हें कोअ्टम या बलनाडू कहते थे। कोअ्टम को नाडूओं में विभाजित किया गया, जिन्हें आज कल परगना या ताल्लुका कहा जाता है। नाडूओं को मेला ग्रामों में विभाजित किया गया था। एक मेला ग्राम में 50 गांव थे। प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी। कुछ ग्रामों के समूह को लिए स्थल तथा सीमा भी कहा गया है। विजयनग्रर राज्य में 6 प्रान्त या मण्डल थे। डोमिग़ो पेइज ने लिखा है, कि समस्त साम्राज्य 200 प्रान्तों में विभक्त था। इस आधार पर कुछ चिद्वान प्रान्तोकं की संख्या 200 मानते है। लेकिन यह सही नहीं है क्योंकि पेइज ने इनमें करद सामन्तों को भी जोड़ दिया था।

प्रान्तों का मुख्य अधिकारी नायक था। इस पद पर सामान्यतः राज्य प्ररिवार के सदस्यों या प्रमुख सामन्तों को नियुक्त किया जताा था। कभी–कभी दण्डनायक वर्ग के अधिकारी भी इस पद पर नियुक्त किए जाते थे। प्रान्ताध्यक्षों को प्र्याप्त स्वात्तशासी अधिकार प्राप्त थे। इनकी अपनी सेना होती थी। इन्हें मुद्रा जारी करने, कर लगाने, कर हटाने, उनमें वृद्धि या कमी करने के अधिकार थे। उन्हें आय–व्यय का हिसाबग केन्द्रीय सरकार को प्रस्तुत करना पड़ता था तााि अवश्ज्ञष राजस्व जो 1/3 होता था भी केन्द्र को देना पड़ता था। आवश्यकता पड़ने पर वह राजा को सैनिक सहायता देते थे। यद्यपि सामान्यतः केन्द्रीय सरकार उनके प्रशासन में हस्तक्षेप नहीं करती थी, तथापि आवश्यकता पड़ने पर हस्तक्षेप किया जाता था। व्यावहारिक रूप से शक्तिशाली राजा ही प्रान्तीय गवर्नरों को नियंत्रण में रख पाते थे।

केन्द्रीय प्रशासन : राजा की सत्ता निरंकुश थी। उसे राय कहा जाता था। समस्त प्रशासन का वह केन्द्र होता था और राज्य की सम्पूर्ण शक्ति उसी में निहीत था। लेकिन व्यावहारिक रूप से वह सवेच्छाचारी नहीं था। वह धर्म के अनुसार शासन करता था। उसे मंत्रियों के परामर्श का भी ध्यान रखना पड़ता था। राजा के चयन में मंत्रियों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती थी। कृष्णदेवराय तथा सदाशिवराय के राजा रोहण में मंत्रियों

की प्रमुख भूमिका थी। राजा का मुख्य काम प्रजा का कल्याण करना था। कृष्णदेवराय ने अपने ग्रन्थ अमूक्त–माल्यद में राजस्व संबंधी विचारों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है, ''मुकुटधारी राजा को सदैव अपने धर्म पर दृष्टि रखते हुए शासन करना चाहिए।'', ''राजा को अपने चतुर्धिक राजनीति में दस लोगों में दस लोगों को एकत्र करके शासन करना चाहिए, राज्य में ऐसी खानों की खोज करनी चाहिए जो बहुमूल्य रत्न देती हो और उन रत्नों को निकलवाना चाहिए। प्रजा पर कम कर लगाना चाहिए, शत्रुओं को शक्ति द्वारा कुचलकर उनके कार्यों को रोकना चाहिए। सबके साथ मित्रता पूर्ण व्यवहार करना चाहिए। अपनी सम्पूर्ण प्रजा की रक्षा करनी चाहिए।'' राजा का कर्तव्य जातियों का मिश्रण रोकना भी कहा गया है। इसका अर्थ यह है, कि प्रजा में नैतिक गुणों का विकास भी राजा का धर्म था।

राजा अपने जीवनकाल में युवराज की घोषणा कर देता था, जिससे उत्तराधिकार युद्ध की सम्भावना न रहे। युवराज सामान्यतः ज्येष्ठ पुत्र होता था। लेकिन योग्य व्यक्ति को भी युवराज नियुक्त कर दिया जाता था। विजय नगर में सुयुक्त शासकों की भी उदाहरण मिलते है – जैसे हरिहर बुक्का।

राजा को प्रशासन में सहायता देने के लिए मंत्री परिषद होती थी। मंत्रियों की नियुक्ति या पदोच्युति राजा करता था। मंत्री परिषद के अतिरिक्त एक अन्य परिषद भी होती थी। इसमें मंत्रियों के अतिरिक्त प्रान्तीय शासक, सेनापति, पुरोहित, राज्य परिवार के सदस्य सम्मिलित होते थे। ऐसे भी उदाहरण प्राप्त हुए हैं, जिनसे ज्ञात होता है, कि मंत्रियों का पद कभी–कभी वंशानुगत कर दिया जाता था। राजा मंत्री परिषद की बात मानने के लिए बाध्य नहीं था। केन्द्रीय सरकार के अन्य अधिकारियों में दण्डनायक थे। जो राज्याधिकारियों की एक विशेष रेणी थी। इस वर्ग के अधिकारियों को सेनापति, न्यायाधीश, गवर्नर, उच्च पदों को नियुक्त किया जाता था। अधिकारियों की एक दूसरी श्रेणी भी थी, जिनको कार्यकर्ता कहा जाता था।

नायंकार प्रशासन : विजयनगर साम्राज्य में प्रानताध्यक्षों के साथ–साथ नायंकार व्यवस्था भी थी, जो सामन्तवादी वयवस्था का ही एक रूप था। कुछ विद्वानों के अनुसार नायक शब्द सेनापतियों के लिए प्रयुक्त किया जाता था। अन्य विद्वान नायक को भू–सामन्त मानते हैं। ये भू–सामनत निश्चत संख्या में सैनिक रखते थे। जिसके व्यय के लिए राजा उन्हें भूखण्ड अर्थात् जागीर प्रदान करता था, जिसे अमरस कहा जाता था। अमरस प्राप्त करने पर नायक के दो उत्तरदायित्व होते थे – प्रथम इनका आय–व्यय केन्द्रीय सरकार को प्रस्तुत करना तथा दूसरा निश्चत संख्या में सैनिक रखना, जिसे उसे राजा की सेवा के लिए प्रस्तुत करना पड़ता था। इन नायकों को अमरस में

प्ररूररसनिक अधिकार भी प्राप्त थे। उत्तरदायित्वों का विर्वाह न करने पर राजा अमरस को जप्त कर सकता था और नायक को दण्ड दे सकता था। एक विशेश तथ्य यह है, कि नायकार व्यवस्था प्रमुख रूप से तमिलनाडू क्षेत्र में प्रखलित थी। इन तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नायांकर प्रणाली साम्राज्यवादी प्रणाली थी, लेकिन ये नायक प्रान्तीय अधिकारियों अर्थात् नायक से भिन्न होते थे। प्रशासन, सैनिक दायित्व तथा राजकीय स्थिति की दृष्टि से गवर्नर और भू–स्वामी सामन्त में अन्तर था। इन नायंकरां की उच्छुकलता का दमन करने के लिए अच्युत ने शासन काल में महामण्डेलश्वर नामक एक अधिकारी की नियुक्ति की गई थी। वास्तव में विजयनगर के साम्राज्य के पतन में नायंकार प्रणाली का भी योगदान था।

स्थानीय प्रशासन : चोल शासनकाल में स्थानीय सवायत्ता प्रशासन की सबसे महत्वपूर्ण व्यवस्था थी। लेकिन चोलों के बाद दक्षिण में जो राजनीतिक विघटन हुआ और उसके बाद जो मुस्लिम आक्रमण हुए उससे इन स्वायत्ता शासी संसथाओं को गहरा आघात पहुँचा और ये लगभग समाप्त हो गई थी। विजयनगर की स्थापना से बिन्दु परंपराओं की पुर्नस्थापना हुई थी किन्तु इन स्वायत्तशासी संस्थाओं को पुनः स्थापित नहीं किया जा सका। ग्रामीण क्षेत्रों में एक विशेष प्रकार की व्यवस्था जिसे आयंगार प्रणाली कहा जाता था विजयनगर साम्राज्य में स्थापित की गई। इस व्यवस्था के अनुसार ग्राम प्रशासन के लिए 12 वयक्तियों कों राज्य नियुक्त करता था। अधिकारियों के इस समूह को आयंगार कहा जाता था। इनके पद वंशानुगत थे और उन्हें वेतन के बदले भूमि प्रदान की जाती थी। उनका कर्तव्य अपने क्षेत्र में शान्ति व्यवस्था बनाये रखना तथा भूमि स्थानान्तरण संबंधी कार्य करना था।

राजस्व प्रशासन : राज्य की आय का मुख्य साधन भू–राजस्व था। इसके निर्धारण के लिए भूमि को तीन श्रेणियों में बांटा गया था – सिंचित भूमि शुष्क भूमि व उद्यान तथा वन। लगान निर्धारण में जो भूमि ब्राह्मणों या मंदिरों को दान में दी गई थी, उन्हें पृथक कर दिया जाता था। अन्य भूमियों का वर्गीकरण उगाई जाने वाली फसलों के आधार पर भी किया जाता था। साथ ही भूमि की उर्वरता पर तथा उसके स्थिति के अनुसार कर लगाया जाता था, लेकिन भूमि की पैमाइश की कोई व्यवस्था नहीं थी और ऐसा प्रतीत होता है, कि सभी क्षेत्रों में लगान की दर समान नहीं थी। हिन्दु विधि के अनुसार लगान की दर सम्भतः 126 थी। सम्भव है सुरक्षा तथा सेना पर भारी व्यय के कारण इस दर में वृद्धि कर दी गई थी। नूनिंग लिखता है, ''समसत भूमि पर राजा का अधिकार है और उन्हीं के हाथों से यह भूमि सरदारों को प्राप्त होती है। ये लोग उसे किसानों को दे देते थे, जो उपज का 1/10 भाग अपने स्वामियों को देते है। जो

उसका 1/2 भाग राजा को दे देते हैं।'' यह स्पष्ट है कि नूनीज लगान की जो दर बताता है वह बहुत ज्यादा है और उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि कृशकों को अन्य कर, चारागाह कर देने पड़ते थे। ब्रह्माणों की भूमि पर 1/20 तथा मन्दिरों की भूमि पर लगान की दर 1/30 थी।

राज्य की आय के श्रोत अन्य कर पर भी थे, जो मकानों, पशुओं, सम्पतित, उद्योग, व्यापार पर कर लगाए गए थे। सभी शिल्पकारों को भी कर देना पड़ता था। और सम्भवतः वैश्याओं को भी कर देना पड़ता था। दैनिक उपभोग की वस्तुओं जैसे फल, तरकारियां आदि पर भी करारोपण किया गया था। इस भारी कर व्यस्था का कारण सेना पर भारी व्यय था, जो राज्य की सुरक्षा के लिए आवश्यकता थी। कर संग्रह ठेके पर दिया जाता था।

सैनिक प्रशासन : राज्य का सैनिक प्रशासन एक युद्धरत राज्य के समान था। जिसमें सैनिक आवश्ष्कताओं को प्रमुखता दी गई थी। समस्त राज्य में सैनिक को जागीर का आधिक्य था। इन जागीरों के सवामी नायक थे। जो सेनाएं रखते थे तथा जागीरों का प्रशासन कते थे। इस प्रणाली को नायंकर प्रणाली कहा गया था। राजा योग्य सैनिक अधिकारियों को जागीरें प्रदान करता था, जिन्हें पड़इपपर्रू सर्वमान्यम भी कहते थे। ये जागीदार सामन्त नायक की अधीनता में अनेक छोटे–छोटे जागीरदार होते थे जिनकी नियुक्ति नायक स्वयं करता था। इस प्रकार सेना का स्वरूप सामन्ती था और यही इसकी दुर्बलता थी।

केन्द्रीय सरकार में एक सैनिक विभाग था, जिसे कन्दाचर कहते थे। इसका अध्यक्ष सेनापति दण्डनायक अर्थात् दन्नयाक था। सामन्तों के अतिरिक्त राजा भी केन्द्रीय सेना रखता था। नूनिज लिखता है, कि विजयनगर के शासक अपनी सामर्थ्या के अनुसार अधिकतम सेना रखते थे। पेइज के अनुसार 1530 ई0 के युद्ध के समय कृश्ण देव राय की सेना में 703000 पदाति, 32000 अश्वारोही तथा 551 हाथी थे। सेना की मुख्य समस्या उत्तम प्रकार के घोड़ों को प्रापत करना था। जिस पर विजय नगर के शासन विशाल व्यय करते थे। उन्होंने हाथियों पर अधिक विश्वास किया और तोपखानों के विकास पर ध्यान नहीं दिया।

न्याय प्रशासन : राजा न्याय का सर्वोच्च अधिकारी था। वह स्वविवादों तथा आरोपों को सुनता था। न्याय के प्रार्थी राजा या प्रधानमंत्री को याचिका प्रस्तुत करते थे। प्रान्तों तथा जिलों में भी न्यायालय थे। राजा न्यायाधीशों की नियुक्ति करता था। गांवों में पंचायतें तथा ग्राम सभाओं में न्याय प्रापत करते थे। फौजदारी कानून कठोर थे।

चोरी, राजद्रोह या व्यभिचार के लिए अंगदेद या प्राण दण्ड दिया जाता था। नूनिज लिखता है, कि राजद्रोह के अपराध में विद्रोहियों को शूली का दण्ड दिया जाता था। नायकों तथा गौन्डों को न्यायिक अधिकार प्राप्त थे।

विजयनगर के सम्राटों ने धार्मिक सहिष्णुता की नीति का पालन किया और सब धर्मों को स्वतंत्रता प्रदान की थी। बारबोशा लिखता है कि ''राजा ने इतनी स्वतंत्रता दे रखी थी। कि कोई भी व्यक्ति स्वतंत्रता से विचरण कर सकता है और अपने धर्म का पालन कर सकता है, उसे न कोई कष्ट देगा और न ये पूछेगा कि तुम इसाई, यहूदी, मुस्लमान या हिन्दु हो।''

4.4 सांस्कृतिक उपलब्धियाँ

विदेशी यात्रियों के लेखो से हमें विजयनगर के लोगों के सामाजिक जीवन का स्पष्ट चित्र मिलता है।

1– वर्ण व्यवस्था– विजयनगर का समाज वर्ण व्यवस्था का पोषण था। हिन्दू समाज के चारो अंग ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वहाँ रहते थे। ब्राह्मणों केसमाज में उच्च स्थान प्राप्त था। राजा कृष्णदेवराय ने ब्राह्मणों की सहायता के लिए एक नया कर लगाया था। शासन में ब्राह्मणें की राय ली जाती थी। ये ब्राह्मण वेद पाठ करते थे और आवयकता पड़ने पर इन्हे सेना के उच्च पदों पर नियुक्त किया जाता था। ब्राह्मण व्यापार भी करते थे। राजनीति सत्ता क्षत्रियों के हाथो में थी। सेना में क्षत्रिय लिये जाते थे। समाज में उनका विशेष आदर होता था। वैष्य लोग व्यापार करते थे। कृषि इनका विशेष व्यवसाय था। कुछ वैश्य वेद, इत्यादि पढ़ते थे। योगी नामक लोग प्रायः नग्न रहते थे।

2– खान–पान– ब्राह्मणों का समाज में अधिक प्रभाव था। ब्राह्मणों को छोड़कर अन्य सब जातियों के लिए खान–पान के प्रतिबन्ध नही थे। राजा तथा साधारण जनता मांसाहारी थी और गाय तथा बैल को छोड़कर सभी प्रकार का गोश्त खया करते थे। चूहे तथा बिल्ली का मांस भी खया जाता था।

3– स्त्रियों की दशा – समाज में स्त्रियों को उचच स्थान प्राप्त था। उन्हे विद्या प्रापत करने की सुविधाएं भी मिली हुई थी। राज्य के उच्च पदों पर भी स्त्रियों को रखा जाता था। पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं था। स्त्रियां, पुरूषों के साथ सामाजिक उत्सवो तथा युद्ध में भाग लेती थी। नूरिज के अनुसार राजा की सेवा करने वाली स्त्रियां, कुष्ती

लड़ने वाली स्त्रियां, हिसाब किताब रखने वाली स्त्रियां, नृत्य एवं गायन करने वाली स्त्रियां समाज में रहती थी। साहित्य के निर्माण में भी स्त्रियों का विशेष योगदान था। तिरूमलम्बादेवी ने 'बरदाम्बिकापरिणयम्' नामक ग्रन्थ तथा गंगा नामक स्त्री ने 'मथुरा विजय' नामक ग्रन्थ लिखा था। राजा अनेक रानियां रखता था। सामन्त तथा धनवान लोग भी अनेक पत्नियां रखते थे। इटली के यात्री निकोलो कोण्टी के अनुसार देवराय द्वितीय की अनेक पत्नियाँ थी। बाल विवाह का समाज में प्रचलन अधिक था। विवाह मुं दहेज का प्रचलन था।

विजयनगर म्रें विधवा विवाह का उल्लेख नही मिलता है। स्त्रियां पति के मृत्यु के बाद सती हो जाया करती थीं। विधवाओं का जीवन पाप युक्त माता जाता था। मौर्यकाल के समान वेश्याएं भी समाज में रहती थी। कृष्णदेवराय के समय के लिए अलग गणिका नगर बसाया गया।

4– मनोरंजन – धनी तथा शासक वर्ग के लोग अपना समय विविध प्रकार के मनोरंजन में व्यतीत करते थे। साधारण जनमा पशु पक्षियों की लड़ाई देखती थी। शिकार भी उस समय होता था। हिन्दू लोग अनेक त्यौहारों में भाग लेते थे। बसन्त का उत्सव भी होता था। होली, दशहरा, रामनवमी आदि त्यौहारो धार्मिक आधार पर होते थे। शतरंत का खेल शासक वर्ग में हुआ करता था।

आर्थिक स्थिति

1– कृषि – साधारण जनमा कृशि करती थी। साम्राज्य के विभिन्न भागों में कृषि को प्रात्साहन देना और बुद्धिमतापूर्ण सिंचांई नीति द्वारा कृषि के उत्पादन में वृद्धि करना विजयनगर के शासको की मुख्य नीति थी। कृष्णदेवराय के समय में अनेक तालाब खुदवाये गये तथा इन्जीनियरों द्वारा बड़ी बड़ी नहरें खुदवायी गयी थी। अच्छी सिंचाई से उत्तम खेती होती थी। तिल, ज्वार एवं कपास की खेती अधिक होती थी। किसानो से उपज का 1/4 से 1/6 तक हिस्सा लिया जाता था।

2– अन्य व्यवसाय – विजयनगर में वस्त्र व्यवसाय बड़ी उन्नत अवस्था में था। ऊनी, रेशमी तथा सूती वस्त्र बनाये जाते थे। कालीकट वस्त्र व्यवसाय का प्रमुख केन्द्र था। भारतीय वस्त्रो की विदेशों में मांग अधिक थी। लोह तांबे आदि धातुओं के व्यवसाय भी उन्नतावस्था में था। तिरूपति में धातुओं को ढालने का काम होता था। तेल व्यवसाय भी प्रगति की ओर था। उद्योगो तथा व्यवसायो के लिए अनेक संघ थे।

3– आयात–निर्यात – अनतर्देशीय तथा सामुद्रिक दोनो प्रकार का व्यवसाय उन्नत अवस्था में था। साम्राज्य में अनेक बन्दरगाह थे और हिन्द सागर के द्वीपो मलाया

द्वीपमाला, वर्मा, चीन, अरब, ईरान, दक्षिणी अफ्रीका, अबीसीनिया, पुर्तगाल आदि से अच्छा व्यापार होता था। वस्त्र, चावल, लोहा, शोरा, शक्कर तथा मसाले निर्रात की वस्तुएं थी। घोड़े, हाथी, मोती, तांबा, कोयला, पारा, रेशम तथा मलमल बाहर से मंगाये जाते थे। सामुद्रिक व्यापार जहाजों द्वारा होता था। विजयनगर के पास अपना एक छोटा जहाजी बेड़ा था और यहाँ के लोग जहाज निर्माण कला से परिचित थे। आन्तरिक व्यापार के लिए बैलों, घोड़ों, गाड़ियों और गधो का प्रयोग होता था।

विजयनगर की समृद्धि – विजयनगर साम्राज्य की गणना विश्व इतिहास के उन राज्यों में है। जो अत्यधिक धनी हुए है। अनेक विदेशी षत्रियों ने विजयनगर के वैभव तथा समृद्धि की प्ररूांसा की है। इटली के पयर्टक निकोली कोण्टी जिसने 1420 ई0 में विजयनगर की यात्रा की लिखते है। नगर की परिधि सात मील है। उसकी दीवारें पर्वत शिखरों तक पहुँचती है। औक्र उनके चरणो को घाटियों घेरे में हुये है। इससे उसका योग्यता विस्तार और भी अधिक बढ़ जाता है। अनुमान से नगर में 10 हजार व्यक्ति अस्त्र शस्त्र धारण करने योग्य है। राजा भारत के अन्य सभी राजाओं से शक्तिशाली हे।

ईरानी कूटनीतिज्ञ तथा पर्यटक अब्दुलरज्जाक जिसने 1442 ई0 –में विजयनगर का भ्रमण किया था। ''देश इतना अच्छा बसा हुआ था। कि उसका चित्र प्रस्तुत करना असम्भव है। राजा के कोष गृह में जिसमें कि गड्ढे खुदे हुए है। उनमें पिघला हुआ सोना भर दिया है। जिसकी ठोस शिलाएं बन गई है। देश के सभी उच्च एवं निम्न जातियों के निवासी यहाँ तक कि बाजार के कारीगर भी कण्ठो, बाहुओ तथा अंगुलियों में जवाहरात तथा सोने के आभूषण पहनते थे।''

डोमिंगोस पेइज नामक पुर्तगाली यात्री लिखता है कि ''यह नगर संसार में सबसे अधिक धन–धान्य से सम्पन्न है। इसमे चावल, गेंहूँ तााि अन्य अनाजों के भण्डार है। बाजार तथा सड़को पर अनग्रिनत बैल सामान से लदे रहते है।''

अतः विदेशी लोगों ने एकमत होकर जो प्रशंसा की है। उससे स्पष्ट है कि विजयनगर साम्राज्य अत्यन्त धनी एवं समृद्ध था।

साहित्यिक विकास – विजयनगर के राजा बड़े साहित्य प्रेमी थे। इनके राज दरबार में अनेक विद्वानों को आश्रय प्राप्त था। इनके शासनकाल में संस्कृत तथा तेलगू साहित्य की बड़ी उन्नति हुई। सायण एवं माधव दो सगे भाई थे। इन दोनों को विजयनगर की राज्यसभा में आश्रय प्राप्त था। माधव ने सुदर्शनसंग्रह नामक ग्रन्थ लिखा तथा सायण ने ऋग्वेद संहिता, ऐतरेय ब्राह्मण तथा आरण्यक उपनिषदो पर टीकाएं लिखी। ये दोनों भाई बुक्का की राज्यसभा के रत्न थे। लक्ष्मीधर नामक विद्वान ने

सरस्वती विकास तथा सौन्दर्य लहरी ग्रन्थ लिखे। भट्टो जी दीक्षित ने सिद्धान्त कौमदी लिखा श्रासराज ने मायावाद खण्डन नामक ग्रन्थ लिखा। तेलगू साहित्य की भी पर्याप्त उन्नति हुई। कृष्णदेवराय स्वयं विद्वान था तथा उसके दरबार में उच्चकोटि के विद्वानो को राजाश्रय प्राप्त था।

विजयनगर की कला – निकोलो कोण्टी एवं अब्दुलरज्जाक के विदित है कि विजयनगर के राजाओं को कला से बड़ा प्रेम था। स्थापत्य कला के क्षेत्र में काफी उन्ननि हुई। राजाओं ने अपनी राजधानी में भव्य भवन तथा सुन्दर मन्दिरो का निर्माण करवाया। राजाओं ने अनेक जलाशय तथा तालाब भी बनवाये थे। भवनो तथा मन्दिरो की दीवारों पर चित्रकारी की जाती थी। राजा कृष्णदेवराय ने सुन्दर हाइजरा का मन्दिर बनवाया था। इस मन्दिर की दीवारो में राम की कथा खुदी हुयी थी। अब्दुलरज्जाक ने लिखा है। ''ऐसा नगर न कभी आंखो से देखा है न कानो से सुना है। नगर में सात दुर्ग एवं सात रक्षा दीवारे है।''

विजयनगर का विठ्ठल स्वामी का मन्दिर स्थापत्य कला का एक अन्य श्रेष्ठ उदाहरण है। विजयनगर के शासकों ने चित्रकला एवं संगीत को भी प्रोत्साहन एवं संरक्ष्झण दिया तथा नाट्य कला की भी उपेक्षा नही की गयी संक्षेप में कहा जा सकता है। कि विजयनगर साम्राज्य का इतिहास साहित्य एवं कलात्मक रचनाओं के विकास के लिए प्रसिद्ध है।

आर. सी. मजूमदार ने भी विजयनगर की कला की प्रशंसा की है।

4.5 पतन के कारण

विजयनगर साम्राज्य का अस्तित्व तीन सौ वर्ष तक रहा। यह दीर्घकाल इस साम्राज्य की असाधारण सफलता का परिचायक है, विशेष रूप से जब उत्तर भारत मुस्लिम अक्रान्ताओं द्वारा पद दलित किया जा चुका था और भारत के मध्य वर्गीय भाग में कृष्णा नदी तक उनका प्रभुत्व स्थापित था। इन विषम परिस्थितियों में विजयनगर ने 300 वर्षों तक मुस्लिम राज्यों से संघर्ष किया। यह आवश्यक है, कि उन विशेष कारणों की समीक्षा की जाय जो साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी थे :–

1– सैनिक दुर्बलता : पहला कारण विजयनगर साम्राज्य की सैनिक दुर्बलता था। स्थापना से ही उसे निरन्तर बहमनी राज्य से युद्ध करना पड़ा। उच्च सैनिक शक्ति से ही वह अपनी रक्षा कर सकता था। वस्तुतः वह एक युद्धरत राज्य था और उसका

अस्तित्व सैनिक कुशलता पर निर्भर था। बहमनी सेना में कुशल अश्वारोही सैनिक थे। इनके पास उत्तम कोटि के घोड़े थे। उनके पास कुशल तीरन्दाज थे, लेकिन तालिकोटा में उनकी विजय का कारण तोपखाना भी था, जो उन्होंने मुगलों के अनुकरण पर संगठित किया था। विजय नगर ने प्रयास अवश्य किए लेकिन उसने युद्धोशैली तथा सैनिक संगठन का प्रभावशाली विकास नहीं किया।

2– सामन्ती प्रणाली : विजयनगर की सेना तथा प्रशासन का सामन्ती संगठन, उसकी पराजय का दूसरा कारण था। इन सामन्तों तथा प्रान्तीय गवर्नरों को इतने व्यापक अधिकार थे कि वे व्यावहारिक रूप से स्वतंत्र शासक थे। सामन्तों की स्वार्थपरता तथा द्वेषों के कारण साम्राज्य में अशान्ति बनी रही और सम्राटों की शक्ति तथा धन का उपव्यय इनके दमन में होता थी। जागीरों की प्रजा तथा सेना की निष्ठा जागीरदारों के साथ थी। इससे विघटन प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिला और केन्द्रीय शासन दुर्बल होता था।

3– अयोग्य उत्तराधिकारी : बहमनी राज्य से निरन्तर युद्धों के कारण यह आवश्यक था कि विजय नगर साम्राटों में कुशाल प्रशासक के साथ योग्य सेनापति के गुण भी हो। कृष्णदेव राय के पश्चात उसके उत्तराधिकारी अयोग्य सिद्ध हुए। दरबार के षड्यन्त्र तथा सामन्तों की महत्वाकांक्षा की ठकराहट से राज्य दुर्बल हो गया और शत्रुओं को आक्रमण करने लिए के प्रोत्साहित किया। रामराय योग्य था लेकिन उसकी स्थिति दुर्बल थी। उसने मुस्लिम राज्यों की फूट से लाभ उठाने की नीति को आरम्भ किया। लेकिन उसकी सह नीति तभी सफल हो सकती जब विजय नगर की सैनिक शक्ति निर्णायक रूप से श्रेष्ठ होती और उसे हिन्दु शासकों का समर्थन प्राप्त होता।

4– सीमा–नीति का अभाव : विजय नगर साम्राज्य को प्राङुतिक सीमाएं प्राप्त नहीं थीं। अतः यह आवश्यक था कि प्रथम रक्षा पंक्ति के रूप में सीमा सुरक्षा पर ध्यान दिया जाता। दुर्भाग्य से उन्होंने गुप्तचर प्रणाली का विकास नहीं किया। उन्होंने मुस्लिम संघ के निर्माण का महत्व नहीं समझा। अनेक बार ऐसा हुआ, कि मुस्लिम सेनाएं राज्य में दूर तक घुस आई। तब उनके आक्रमण का समाचार इन सम्राटों को मिला। उड़ीसा के गजपति नरेशों से उनका दीर्घकालीन युद्ध अविवेकपूर्ण था।

5– अदूरदर्शी आर्थिक नीति : एक युद्धरत राज्य के लिए जिस प्रकार की सतर्क आर्थिक नीति की आवश्यकता होती है, उसका विजयनगर साम्राज्य की नीति में अभाव था। उत्तम घोड़ों को प्राप्त करने के लिए वे अरबों पर निर्भर थे। अरबों ने लूट की नीति अपनाई और सम्राट इसका विकल्प नहीं ढूंढ़ सकें। उन्होंने पुर्तगालियों से अच्छे

घोउत्रे तथा तोपें प्राप्त करने के लिए उन्हें अधिक व्यापारिक सुविधाएं प्रदान की। इसमें साम्राज्य की आय कम हो गई। दूसरी ओर पुर्तगालियों से उन्हें सहायता नहीं मिलीं।

6– धार्मिक प्रेरणा की कमी : विजय नगर साम्राज्य की स्थापना का मुख्य कारण हिन्दुओं का धार्मिक उत्साह था। इसी उत्साह के आधार पर ही उसे संगठित तथा सुरक्षित रखा जा सकता था। इसलिए धीरे–धीरे यह धार्मिक प्रेरणा दुर्लभ हो गयी और यह धारणा भी समाप्त हो गयी, कि उसकी स्थापना का उद्देश्य हिन्दु धर्म की रक्षा करना है। इसके सम्राट हिन्दु राजाओं से युद्ध करते रहे। सामन्तों में संघर्ष होते रहे और दरबार में भी सामरिक उद्देश्यों के लिए षड्यंत्र होने लगे। दूसरी ओर मुस्लिम राज्यों ने धर्म की रक्षा के लिए अपने मतभेदों को भुला दिया और संघ का निर्माण कर लिया।

4.6 सारांश – सल्तनत काल में विजयनगर की स्थापना एक महत्वपूर्ण घटना थी। हरिहर एवं बुक्का नामक दो भाइयों द्वारा इसकी स्थापना ने अनेक प्रकार के प्रतिमान को स्थापित किया। यह नगर अपनी सांस्कृतिक उपलब्धियों के लियें प्रसिद्व है। इस नगर में स्त्रियों की दशा अत्यन्त अच्छी थी। आयात– निर्यात उन्नत अवस्था में था।

4.7:– अभ्यासार्थ प्रश्न

1. विजय राज्य के उत्थान एवं पतन का वर्णन कीजिए।
2. विजयनगर राज्य की प्रशासन व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।
3. विजयनगर की संस्कृति की प्रमुख विशेषताए बताइये।

4.8 सहायक ग्रन्थ

दिल्ली सल्तनत : डॉ0 नीना शुक्ला

ए0 वी0 पाण्डेय

एल0 पी0 शर्मा

इकाई 5 शर्की राजवंश काइतिहास एवं उपलब्धियाँ

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 विषय वस्तु

5.3 सारांश

5.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.5 सहायक ग्रन्थ

5.1 प्रस्तावना

जौनपुर सल्तनत 1394 ई0 से 1479 ई0 के मध्य उत्तर भारत में एक स्वतनत्र राज्य के रूप में विद्यमान थी। इसके शासक जौनपुर कों राजधानी बनाकर शासन करते थे। यहाँ के शासकों कोशर्की सुल्तान कहा जाता था। ख्वाजा–ए–जहाँ मलिक सरवर जो पहले सुल्तान थे, वे सुल्तान नासिरूद्दीन मुहम्मद शाह द्वितीय तुगलक के वजीर थे। 1394 ई0 में उन्होंने अपने को स्वतन्त्र शासक के रूप में स्थापित करने में सफलता पाई और अवध के अतिरिक्त गुगा यमुना दोआव में शासन का विस्तार किया। इस राजवंश का नाम शर्की राजवंश पड़ा, क्योंकि पहले शासक की उपाधि मलिक–उसक–शर्क थी। इस वंश के सबसे महत्वपूर्ण शासक इब्राहिम शाह थे। अनितम शासक हुसैन शाह को परास्त करने का कार्य बहलोल लोदी ने किया था। लेकिन जौनपुर के राज्य को दिल्ली सल्तनत में मिलाने का कार्य सिकन्दर लोदी ने किया।

5.2 विषय वस्तु

1– मलिक सरवर ख्वाजा–ए–जहा – 1389 ई0 में मलिक सरवर ने ख्वाजा जहाँ की उपाधि धारण की थी। 1394 ई0 में वह जौनपुर का गर्वनर नियुक्त किया गया था और मलिका उस शर्क की उपाधि दिल्ली में सुल्तान से प्राप्त की थी। शीघ्र ही उसने एक स्वतन्त्र शासक की भाँति कार्य करना आरम्भ कर दिया और अतावि–ए–आजम की उपाधि धारण कर ली। उसने इटावा, कननौज और कोल में विद्रोह का दमन किया। साथ ही कड़ा अवध सण्डीला, बहराइच, इलमऊ, बिहार, तिरहुत आदि पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर लिया। जाजनगर और लखनौली के शासक ने

उसकी अधीनता स्वीकार कर ली और उपहार के रूप में हाथी भेंट किए। उसकी मृत्यु के बाद उसके दत्तक पुत्र ने मुबारक शाह के नाम से शासन करना आरम्भ कर दिया।

2– मुबारक शाह – 1399 ई0 में सत्ता में आने पर अपने नाम से सिक्के जारी अैर खुत्बा पढ़वाया। उसके शासन में मल्लू इकबाल ने जौनपूर को वापस लेने की कोशिश की। 1402 ई0 में उसकी मृत्यु के बाद इब्राहीम शाह सुल्तान बने, जिनहोंने समसुद्दीन मुबारक शाह की उपाधि धारण की।

3– इब्राहीम शाह – मुबारक शाह के छोटे भाई इब्राहीम शाह के नेतृत्व में जौनपुर राज्य अपने उच्चतम शिखर पर पहुँच गया। उसने 1402 ई0 से 1440 ई0 तक शासन किया। पूर्व में बिहार तथा पश्चिम में कन्नौज तक उसका राज्य फैल गया। एक समय में उसने दिल्ली पर भी आक्रमण किया। एक मुस्लिम धार्मिक व्यक्ति मुहम्मदी जौनपुरी के संरक्षण में उसने बंगाल की सल्तनत को चुनौती दी।

इब्राहीम शाह इस्लामी शिक्षा का संरक्षक था। उसने अनेक कालेजों की स्थापना की व बड़ी संख्या में इस्लामी धर्मशास्त्र की पुसतकें उसके शासन काल में लिखी गयी थी जिनमें हासिया व कानून–ए–हिन्दी, बहर–उल–मवज, फतवा–ए–इब्राहीम शाही इसमें शामिल है। वह क्षेत्रीय स्थापत्य कला के विभिन्न स्मारकों के निर्माण के लिए प्रसिद्ध था। इब्राहीम के शासन काल में नासिरूद्दीन महमूद तुगलक शाह ने मल्लू इकबाल के नियन्त्रण से मुक्त होने के लिए जौनपुर में शरण ली। लेकिन उसने नासिरूद्दीन के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया। परिणामस्वरूप दोनों के बीच सम्बन्ध खराब हो गए और तुगलक ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया। लेकिन असफल हुआ। उसे बंगाल विजय में भी सफलता नहीं मिली। वह उसकी मृतयु के बाद महमूद शाह शासक हुआ।

4– महमूद शाह – महमूद शाह ने चुनार की विजय की। उसने बंगाल और उड़ीसा को जीतने के लिए अभियान चलाया। 1452 ई0 में उसने दिल्ली पर आक्रमण किया लेकिन बहलाल लोदी ने उसे परास्त कर दिया। आद में भी उसने दिल्ली जीतने का प्रयास किया और इटावा तक गया। अन्ततः दोनों के बीच सन्धि हो गई। उसने शम्साबाद तक बहलोल के शासन को स्वीकार कर लिया। इसी समय महमूद की मृत्यु हो गई। उसके पुत्र भीखन ने मुहम्मद शाह के नाम से शासन करना आरम्भ किया।

5– मुहम्मद शाह – मुहम्मद शाह ने 1457 ई0 में शासक बनने पर बहलौल लोदी के साथ समझौता कर लिया और शमसाबाद में शासन करने की छूट दे दी। मुहम्मदशाह का सामन्तों से विवाद उत्पन्न हो गया था। 1458 ई0 में सुल्तान के भाई का कत्ल कर दिया गया। दूसरे भाई हुसैन ने अपने को सुल्तान घाषित कर दिया और

हुसैन शाह शर्की की उपाधि धारण की। मुहम्मद शाह कुछ समय बाद हुसैन की सेना द्वारा कन्नौज में मार दिया गया।

6– हुसैन शाह – अन्तिम शासक हुसैन शाह ने 1458 ई0 में बहलोल लोदी के साथ चार वर्ष के लिए समझौता कर लिया। 1478 ई0 में वह दिल्ली पर आक्रमण करने के उद्देश्य से यमुना के किनारे पर एक बड़ी सेना लेकर पहुँचा था। बहलोल लोदी ने उससे समझौता करना चाहा, लेकिन हुसैन शाह ने अस्वीकार कर दिया। बहलोल और हुसैन की सेना के बीच युद्ध में हूसैन पराजित हो गया। अगले ही वर्ष दोनों के बीच पुनः युद्ध हुआ। लेकिन हुसैन दुबारा पराजित हो गया। जिसके परिणामस्वरूपक झिली, पटियाली शक्सावाद सुकेत, कोल, जलेसर परगने पर इब्राहीम का नियन्त्रण हो गया। सेहना और रपरी में हुए युद्ध में मिली पराजय के कारण हुसैन का भागना पड़ा। वह भाागकर बंगाल चला गया। जहाँ अलाउद्दीन हुसैन शाह ने उसे शरण प्रदान की। अपने जमीन के अन्तिम दिन सुल्तान ने वही बिताए।

कला एवं स्थापत्य – जौनपुर के शर्की शासक साहित्य कला और स्थापत्य के संरक्षण के लिए प्रसिद्ध है। जौनपुर को पूरब का सिराज कहा जाता था। शर्की शैली में निर्मित इमारतों में अटाला मस्जिद का निर्माण फिरोज शाह तुगलक ने आरम्भ कराया था। लेकिन इसे पूरा कराने का कार्य 1408 में इब्राहीम शाह द्वारा किया गया था। झांझिरी मस्जिद का निर्माण भी इब्राहीम शाह द्वारा 1430 ई0 कराया गया था। लाल दरवाजा मस्जिद का निर्माण 1450 ई0 में महमूद शाह ने करवाया था। जामा मस्जिद का निर्माण अन्तिम शासक हुसैन शाह ने कराया था।

संगीत – अन्तिम शासक हुसैन शाह को गन्धर्व की उपाधि प्राप्त थी। उसने खयाल के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। विभिन्न रागों के संकलन के लिए भी उसे याद किया जाता है। जिनमें मलहार–श्यामा, गौर श्यामा, गोपाल श्यामा, जौनपुरी–असावरी और जौनपुरी बसन्त प्रमुख है।

5.3 सारांश– शर्की राजवंश की स्थापना इतिहास में महत्वपूर्ण राजवंश के रूप में प्रसिद्व है। इस राजवंश में जौनपुर का महत्वपूर्ण योगदान है। इस काल में विविध क्षेत्रों में प्रगति एवं विकास दृष्टिगत होता है। सामान्य रूप से यह राजवंश का जौनपुर के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान एवं योगदान है।

5.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. शर्की राज्य के उत्थान एवं पतन का वर्णन कीजिए।
2. शर्की राज्य की सांस्कृतिक उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।

5.5 सहायक ग्रन्थ

दिल्ली सल्तनत : डॉ0 नीना शुक्ला

ए0 वी0 पाण्डेय

एल0 पी0 शर्मा

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

UGHY- 02

भारत का इतिहास

(1206 ई. से 1556 ई.तक)

खण्ड – 5

इकाई प्रथम–

सैयद वंश का उत्थान एवं पतन– 1414–1451 ई0 तक

इकाई द्वितीय–

लोदी राज्य की स्थापना, बहलोल लोदी प्रारम्भिक जीवन एवं उपलब्धियाँ एवं राजत्व सिद्धान्त

इकाई तृतीय–

सिकन्दर लोदी का जीवन एवं उपलब्धियाँ

इकाई चतुर्थ–

इब्राहिम लोदी (1517–1526 ई0 तक) पानीपत का प्रथम युद्ध एवं दिल्ली सल्तनत का अंत

इकाई पंचम–

सल्तनतकालीन भारत की साहित्यिक–सांस्कृतिक उपलब्धियाँ

इकाई की रूपरेखा :

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

UGHY-02-भारत का इतिहास (1206 ई.से 1556 ई.तक)

परामर्श समिति

अध्यक्ष	प्रो0 सीमा सिंह माननीया, कुलपति, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
	प्रो0 पी0 पी0 दुबे , कुलसचिव, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठयक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो.सन्तोषा कुमार	आचार्य, इतिहास एवं प्रभारी निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो.मुकुन्द शरण त्रिपाठी	आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,गोरखपुर
प्रो.हिमांशु चतुर्वेदी	आचार्य इतिहास विभाग दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,गोरखपुर
प्रो.हेरम्ब चतुर्वेदी	आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज
डॉ. सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

इकाई लेखक	खण्ड	इकाई	सम्पादक
डॉ. बालकेश्वर, सह आचार्य, इतिहास काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही, उत्तर प्रदेश	प्रथम खण्ड	1,2,3,4,5	प्रो.हेरम्ब चतुर्वेदी आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
श्री विवेक कुमार सिंह, सहायक आचार्य, इतिहास लाल बहादुर शास्त्री, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दीनदयाल नगर, उत्तर प्रदेश	द्वितीय खण्ड तृतीय खण्ड	1,2,3,4,5 1,2,3,4,5	
डॉ. सत्यनारायण वर्मा, सह आचार्य, इतिहास पंडित दीनदयाल उपाध्याय राजकीय बालिका महाविद्यालय, सेवापुरी, वाराणसी, उत्तर प्रदेश	चतुर्थ खण्ड	1,2,3,4,5	
मु. तुफैल खाँ, सहायक आचार्य, इतिहास गाँधी फैज–ए–आम, पी. जी. कॉलेज, शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश	पंचम खण्ड षष्ट्म खण्ड	1,2,3,4,5 1,2,3,4,5	

2022 (मुद्रित)

(c) उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज– 211021

ISBN – 978-93-94487-57-4

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस साम्रगी के किसी भी अंश को उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

पंचम खण्ड– सैयद वंश तथा प्रथम अफगान राज्य की स्थापना

इकाई प्रथम– सैयद वंश का उत्थान एवं पतन– 1414–1451 ई0 तक

इकाई की रूपरेखा :

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 खिज्र खाँ

1.3 मुबारक शाह

1.4 मुहम्मद शाह

1.5 अलाउद्दीन आलम शाह

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.9 बोध–प्रश्नों के उत्तर

1.10 सहायक ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे–

- सैयद वंश और उसकी स्थापना
- सैयद वंश के शासक
- सैयद वंश का पतन
- सल्तनत काल में सैयद शासकों की भूमिका
- बहलोल लोदी का एक परिचय

1.1 प्रस्तावना :

सन् 1398 में तैमूर के आक्रमण ने तुगलक साम्राज्य को बड़ा आघात पहुँचाया और यह आक्रमण तुगलक साम्राज्य के ताबूत में आख़िरी कील साबित हुआ। अव्यवस्था और विनाश करने के बाद तैमूर समरकन्द वापस लौट गया। 19 मार्च 1399 ई0 को

उसने पुनः सिन्धु को पार किया। भारत छोड़ने से पूर्व उसने दरबार किया और खिज्र खाँ को मुल्तान और दिपालपुर का सूबेदार नियुक्त किया। कुछ इतिहासकार लिखते हैं कि उसने खिज्र खाँ को अपना वायसराय नियुक्त किया था। सत्य जो भी हो, तैमूर के आक्रमण से अवशिष्ट तुगलक राज्य लगभग समाप्त हो गया और 1414 ई0 में दिल्ली में सैयद राजवंश की स्थापना खिज्र खाँ ने की, इसमें लेशमात्र भी असत्य नहीं है।

सैयद वंश का शासन 37 वर्ष रहा। उसके समय में न तो खलजी–वंश के शासकों की भांति साम्राज्य–विस्तार की साहसिक नीति अपनायी गयी और न तुगलक वंश के शासकों की तरह प्रशासकीय सुधारों का प्रयत्न किया गया। सैयद शासक किसी भी आदर्श को अपने और अपनी प्रजा के सम्मुख रखने में असमर्थ रहे जिसके कारण विभाजन और विघटन की जो प्रवृत्ति फीरोज़ के उत्तराधिकारियों के समय में प्रबल रही थी वह उनके समय में भी बिना किसी बाधा के प्रोत्साहन प्राप्त करती रही।

1.2 खिज्र खाँ (1414–1421 ई0) :

खिज्र खाँ सैयद वंश का संस्थापक था। उसने स्वयं को पैगम्बर मुहम्मद का वंशज बताया था परन्तु इसका कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता। सम्भवतः उसके पूर्वज अरब से मुल्तान आकर बस गए थे। खिज्र खाँ ने सुल्तान की उपाधि धारण नहीं की और रयत–ए–आला की उपाधि से संतोष किया। उसने तैमूर के चतुर्थ पुत्र तथा उत्तराधिकारी शाहरूख के प्रतिनिधि के रुप में शासन करने का बहाना किया और नियमपूर्वक उसे वार्षिक कर भेजता रहा। उसने कई वर्षों तक खुतबा भी शाहरुख के नाम से पढ़वाया और अपने सिक्कों पर तुगलक शासकों के नाम ही रहने दिये। सम्भवतः इसका कारण सोने–चांदी की कमी थी। परन्तु उसका मूल उद्देश्य तुर्क और अफगान सरदारों को संतुष्ट रखना तथा अपनी प्रजा की सहानुभूति प्राप्त करना था। खिज्र खाँ का दिल्ली पर अधिकार हो जाने से पंजाब, मुल्तान और सिन्ध दिल्ली सल्तनत के अधीन हो गए। इस प्रकार राज्य का विस्तार अब लगभग दूना हो गया।

खिज्र खाँ को अपने शासनकाल में कोई महत्वपूर्ण सफलता नहीं मिली। उसने इटावा, कटेहर, कन्नौज, पटियाली और काम्पिलय को पुनः जीतने का प्रयास किया किन्तु अधिक सफलता प्राप्त न कर सका। लगभग प्रत्येक वर्ष वह लूट और राजस्व वसूलने के लिए सैनिक यात्राऐं करता और लौट आता। खिज्र खाँ ने तुर्की अमीरों को संतुष्ट करने की नीति अपनायी और उन्हें उनकी जागीरों से वंचित नहीं किया परन्तु वे संतुष्ट नहीं हुए और उस सुविधा का उपयोग उन्होंने निरन्तर विरोध और विद्रोह करने के लिए किया। खिज्र खाँ इस विद्रोही प्रवृत्ति को स्थायी रुप से समाप्त करने में

असफल हुआ। उसके समय में गुजरात, मालवा और जौनपुर के शासक दिल्ली को प्राप्त करने के इच्छुक रहे परन्तु उन्होंने कोई बड़ा आक्रमण नहीं किया।

अपने अंतिम समय में वह मेवात पर आक्रमण करने के लिए गया और उसने कोटला के किले को नष्ठ कर दिया। इटावा पर अधिपत्य स्वीकार करवाकर वापस आते हुए मार्ग में बीमार हो गया और 20 मई, 1421 ई0 को दिल्ली पहुँचकर उसकी मृत्यु हो गयी।

खिज्र खाँ, बुद्धिमान, उदार और न्यायप्रिय शासक था। उसका व्यक्तिगत चरित्र अच्छा था। इसी कारण वह अपनी प्रजा का प्रेम प्राप्त कर सका। फरिश्ता ने लिखा था, ''प्रजा उसके शासन के अर्न्तगत प्रसन्न और संतुष्ट थी और इस कारण जवान और वृद्ध, गुलाम तथा स्वतन्त्र नागरिक–सभी ने उसकी मृत्यु होने पर काले वस्त्र पहनकर अपना शोक प्रकट किया।''

1.3 मुबारकशाह (1421–1434 ई0) :

जिस समय खिज्र खाँ मृत्यु–शैय्या पर लेटा हुआ था उसने अपने पुत्र मुबारक खाँ को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। नया सुल्तान दिल्ली के सिंहासन पर बैठा और मुबारकशाह की उपाधि धारण की। अमीरों ने उसे अपना शासक स्वीकार कर लिया किन्तु वास्तव में उसे उनसे उचित सहायता न मिल सकी। अपने पिता की भांति उसे भी राज्य के विभिन्न भागों में विद्रोहियों तथा अव्यवस्था का दमन करने के लिए सैनिक यात्राएं करनी पड़ती थीं। मुबारक को भटिण्डा में एक विद्रोह को शांत करने में सफलता मिली, दोआब में भी उसने एक विद्रोह का दमन किया किन्तु नमक की पहाड़ियों के खोक्खरों को वह दण्ड नहीं दे सका। उनका नेता जसरथ महात्वाकांक्षी सामंत था और दिल्ली की गद्दी को पाने की लालसा रखता था। उसके शासनकाल की एक महत्वपूर्ण बात यह कि उसके दरबार के दो महत्वपूर्ण हिन्दू अमीरों का उल्लेख मिलता है। राज्य के वजीर सरवर–उल–मुल्क के नेतृत्व में कुछ हिन्दू तथा मुस्लिम अमीरों ने सुल्तान के विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा। 19 फरवरी, 1434 ई0 को जब मुबारकशाह यमुना के किनारे एक नए नगर के निर्माण का निरीक्षण कर रहा था, उसी समय षड्यन्त्रकारी उस पर टूट पड़े और उसका वध कर दिया।

'तारीखे मुबारकशाही' नामक फारसी ग्रंथ में हमें मुबारकशाह तथा उसके पूर्वाधिकारियों के शासनकाल का विस्तृत विवरण मिलता है। इस ग्रंथ की रचना इसी सुल्तान के शासनकाल में यहिया बिन अहमद सरहिन्दी ने की थी।

1.4 मुहम्मदशाह (1434–1445 ई0) :

मुबारकशाह के पश्चात् उसके भाई का पुत्र मुहम्मद–बिन–फरीद खाँ मुहम्मदशाह के नाम से गद्दी पर बैठा। वह अयोग्य और विलासी सिद्ध हुआ। उसने अपनी अयोग्यता से सैयद वंश के पतन का मार्ग तैयार कर दिया। आरम्भ के छः माह वज़ीर सरवर–उल–मुल्क का शासन पर पूर्ण प्रभाव रहा। नयाब सेनापति कमाल–उल–मुल्क सैयद वंश के प्रति वफादार रहा जिसकी मदद् से सुल्तान ने वजीर के प्रभाव से स्वयं को मुक्त किया और वजीर तथा उसके सहयोगियों का वध कर दिया।

मुहम्मदशाह वजीर के प्रभाव से तो मुक्त हो गया परन्तु स्वयं भी शासन की देखभाल न कर सका। नवीन वजीर कमाल–उल–मुल्क भी अधिक योग्य न था। परिणाम स्वरुप विद्राहियों और बाह्य आक्रमणकारियों को अवसर मिला। मालवा के शासक महमूद ने दिल्ली पर आक्रमण किया। मुहम्मदशाह ने अपनी सहायता के लिए मुल्तान के सूबेदार बहलोल को बुलाया। दिल्ली से दस मील दूर तलपत नामक स्थान पर युद्ध हुआ परन्तु निर्णय न हो सका। मुहम्मद शाह ने महमूद के पास सन्धि का प्रस्ताव भेजा और महमूद अपनी राजधानी पर गुजरात के शासक द्वारा आक्रमण का समाचार पाकर वापस जाने को तैयार हो गया। वापस जाते हुए महमूद पर बहलोल ने आक्रमण किया तथा कुछ सामान को लूटने और सैनिकों को बन्दी बनाने में सफलता प्राप्त की।

मुहम्मदशाह ने बहलोल का सम्मान किया, उसे अपना पुत्र कहकर पुकारा और खान–ए–खाना की उपाधि दी। पंजाब के अधिकांश भाग पर बहलोल का स्वामित्व भी स्वीकार कर लिया गया। इससे लालायित होकर 1443 ई0 में स्वयं बहलोल ने दिल्ली पर आक्रमण किया। इससे स्पष्ट हो गया कि सैयद शासकों द्वारा उत्तर–पश्चिम और पंजाब की सुरक्षा के लिए नियुक्त किए गए अफगान व लोधी सरदार शक्तिशाली और महात्वाकांक्षी बन गए थे तथा उनका नेता बहलोल लोदी दिल्ली को जीतकर स्वयं सुल्तान बनने के लिए उत्सुक था।

इस प्रकार मुहम्मदशाह असफल शासक सिद्ध हुआ और उसके समय से सैयद वंश का पतन आरम्भ हो गया। सन् 1445 ई0 में उसकी मृत्यु हो गई।

1.5 अलाउद्दीन आलमशाह (1445–1450 ई0) :

मालिकों एवं अमीरों ने मुहम्मद के पुत्र को अलाउद्दीन आलमशाह के नाम से सिंहासन पर बिठाया। नया सुल्तान अपने पिता से भी अयोग्य निकला। बहलोल लोदी ने दिल्ली सरकार की दुर्बलता से अधिक से अधिक लाभ उठाने का प्रयत्न किया। उसके भाग्य से नए सुल्तान और उसके वजीर हमीद खाँ में झगड़ा छिड़ गया। हमीद खाँ ने बहलोल को दिल्ली आमंत्रित किया और सोचा यह अफगान मेरे हाथ की

कठपुत्ली बन जायेगा और वह पूर्ववत् शासन करेगा। बहलोल ऐसा व्यक्ति नहीं था कि अन्य किसी व्यक्ति को राज्य में हिस्सा देता। उसने अपनी कुटिल नीति से दिल्ली पर अधिकार कर लिया और हमीद को अपने मार्ग से हटा दिया। अलाउद्दीन आलमशाह ने सम्पूर्ण राज्य बहलोल को सौंप दिया और स्वयं बदायूँ जाकर रहने लगा। 1450 ई0 तक बहलोल ने सम्पूर्ण शासन अपने हाथों में ले लिया। हालांकि बहलोल ने अलाउइ्दीन आलमशाह को दिल्ली आने का निमन्त्रण दिया परन्तु अलाउद्दीन ने अपनी दुर्बल स्थिति को देखकर बदायूँ में रहना ही उचित समझा। उसने बहलोल को उत्तर दिया कि क्योंकि मेरे पिता ने तुम्हें अपना पुत्र पुकारा था और मुझे थोड़ी सी आवश्यकताओं की पूर्ति के बारे में विशेष चिंता नहीं है अतएव मैं बदायूँ के उस परगने से ही संतुष्ट हूँ और साम्राज्य तुम्हें सौंप रहा हूँ। बहलोल ने कोई प्रयत्न नहीं किया और अलाउद्दीन अपनी मृत्यु तक (1476 ई0) बदायूँ पर शासन करता रहा। उसके पश्चात् उसके दामाद और जौनपुर के शासक हुसैनशाह शर्की ने बदायूँ को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया।

1.6 सारांश

इस प्रकार 37 वर्ष के नगण्य शासन के पश्चात् सैयद वंश समाप्त हो गया। मुल्तान के राज्य के रुप में उसका उत्थान हुआ और बदायूँ के राज्य के रूप में वह समाप्त हुआ। सैयद शासक न तो दिल्ली सल्तनत को सुरक्षित रख सके और न उसे कोई प्रशासकीय व्यवस्था अथवा सिद्धान्त प्रदान कर सके और बहलोल लोदी को वस्तुतः न केवल नवीन राज्य का ही निर्माण करना पड़ा बल्कि एक नवीन राजत्व–सिद्धान्त को भी जन्म देना पड़ा। भारतीय मध्ययुगीन इतिहास में राजनीतिक अथवा सांस्कृतिक दृष्टि से उसका कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं रहा यद्यपि वह दिल्ली साम्राज्य के विघटन और पुनःर्निर्माण के क्रम में एक अनिवार्य कड़ी था।

1.7 शब्दावली

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. सैयद वंश के प्रमुख शासकों का वर्णन कीजिए।
2. सैयद वंश के पतन के क्या कारण थे ?
3. ''सैयद सुल्तान राजतन्त्र अथवा असैनिक शासन–व्यवस्था की पद्धति में कोई सक्रिय योगदान नहीं दे सकते थे।'' समीक्षा कीजिए।

बोध–प्रश्न :

निम्नलिखित कथनों को पढ़कर सही (√) एवं गलत (x) के चिह्न लगाओ–

(i) खिज्र खाँ सैयद वंश का संस्थापक था। ( )

(ii) खिज्र खाँ ने सुल्तान की उपाधि ग्रहण की। ( )

(iii) मुबारक खाँ ने शाह की उपाधि धारण की। ( )

(iv) सैयद वंश का शासन 37 वर्ष तक रहा। ( )

1.9 बोध–प्रश्नों के उत्तर : (i) √ (ii) x (iii) √ (iv) √

1.10 सहायक ग्रन्थ :

1. Sarhindi, Yahiya Bin Ahmad : Tarikh-E-Mubarakshahi.
2. Elliot & Dowson : History of India, etc., Vol.-III
3. Haiz, Woolsely : Cambridge, History of India, Vol.-III
4. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव : भारत का इतिहास 1000–1707, आगरा

इकाई द्वितीय– लोदी राज्य की स्थापना, बहलोल लोदी प्रारम्भिक जीवन एवं उपलब्धियाँ एवं राजत्व सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा :

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 लोदी राज्य की स्थापना

2.3 प्रारम्भिक जीवन

2.4 बहलोल की उपलब्धियाँ

2.4.1 गृहनीति

2.4.2 युद्ध एवं विजयें

2.5 राजस्व सिद्धान्त

2.6 सारांश

2.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.8 बोध–प्रश्नों के उत्तर

2.9 सहायक ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे–

- लोदी वंश और उसकी स्थापना
- बहलोल लोदी का प्रारम्भिक जीवन
- बहलोल की उपलब्धियाँ
- बहलोल का राजस्व सिद्धान्त
- बहलोल लोदी की गृहनीति

2.1 प्रस्तावना

दिल्ली सल्तनत व्यवहारिक रुप से समाप्त हो चुकी थी। केवल दिल्ली के बीस मील क्षेत्र में उसकी सत्ता रह गई थी। अंतिम सैयद सुल्तान अलाउद्दीन आलमशाह और उसके वज़ीर हमीर खाँ में मतभेद हो गया जिसके कारण सुल्तान बदायूँ चला गया। दिल्ली की गद्दी खाली थी और बहलोल लोदी के लिए सुनहरा अवसर था।

2.2 लोदी राज्य की स्थापना :

वज़ीर हमीद खाँ ने मुल्तान के सूबेदीर बहलोल लोदी को दिल्ली आने के लिए आमंत्रित किया। उसने सोचा बहलोल नाममात्र का सुल्तान बना रहेगा या वापस चला जायेगा और वास्तविक सत्ता उसके हाथ में रहेगी। बहलोल ने इस निमंत्रण को तुरन्त स्वीकार कर लिया। दिल्ली से बहलोल ने सुल्तान अलाउद्दीन आलमशाह जो बदायूँ मे था, को पत्र लिखा कि वह राजतन्त्र की रक्षा के लिए दिल्ली आया है। लेकिन सुल्तान समझ गया और उसने बदायूँ रहना ही उचित समझा। इस प्रकार बहलोल को दिल्ली की सत्ता बिना किसी संघर्ष के प्राप्त हो गई। 19 अप्रैल 1451 ई0 को बहलोल का राज्यभिषेक सम्पन्न हुआ और सैयद राजवंश समाप्त हो गया तथा लोदी वंश की स्थापना हुई।

2.3 प्रारम्भिक जीवन :

बहलोल लोदी अफगानों के गिलजई कबीले की 'शाहूखेल' शाखा से सम्बन्धित था। उसका दादा मलिक बहराम, फिरोज तुगलक के समय में आकर बस गया था और उस प्रांत के सुबेदार मलिक मर्दान के यहाँ नौकरी कर ली थी। उसके पाँच पुत्र थे जिनमें मलिक सुल्तान शाह तथा मलिक काला नामक दो ने कुछ ख्याति प्राप्त कर ली थी। बहलोल मलिक काला का पुत्र था जो जसरथ खोक्रवर को हराकर स्वतन्त्र सरदार बन बैठा था। बहलोल के चाचा सुल्तानशाह को खिज्र खाँ ने 1419 ई0 में सरहिन्द का सुबेदार नियुक्त किया था और इस्लाम खाँ की उपाधि प्रदान की थी। उसे पंजाब के अफगानों को उपने नेतृत्व में संगठित करने में पर्याप्त सफलता मिली। अपनी मृत्यु से पहले उसने अपने पुत्र कुतुब खाँ को छोड़कर बहलोल को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। उसकी मृत्यु के उपरान्त बहलोल सरहिन्द का सूबेदार नियुक्त हो गया। बाद में उसे लाहौर को भी अपनी सूबेदारी में सम्मिलित करने की आज्ञा मिल गयी। वह चतुर तथा महात्वाकांक्षी पदाधिकारी था, इसलिए उसने अपनी सेना की संख्या बढ़ायी और शीघ्र ही सैयद राज्य में प्रथम श्रेणी का सूबेदार बन गया। महमूद खलजी के विरुद्ध मुहम्मदशाह की सहायता की और परिणामस्वरुप उसे खानेजहाँ की उपाधि मिली। जब सैयद सुल्तान अलाउद्दीन आलमशाह अपने वज़ीर से झगड़कर बदायूँ चला गया तो वज़ीर हमीद खाँ ने उसे दिल्ली बुलाया। यह उसके लिए अच्छा अवसर था जिसका उसने कूटनीतिक तरीके से लाभ उठाया और सिंहासन पर काविज़ हो गया।

2.4 बहलोल की उपलब्धियाँ :

2.4.1 गृहनीति :

बहलोल को सुल्तान की प्रतिष्ठा स्थापित करनी थी, अफगानों की श्रेष्ठता को स्थापित करना था, विद्रोही सरदारों और जमीदारों को दबाना था तथा शासन को व्यस्थित करना था। जिसे उसने कुशलतापूर्वक किया। उसकी शक्ति पूर्णतः उसके अफगान अनुयायियों पर निर्भर थी। इसलिए उसने उन्हें संतुष्ट करने का प्रयत्न किया, उन्हें बड़ी–बड़ी जागीरें दीं। राज्य में आन्तरिक व्यवस्था स्थापित करने तथा अमीरों और सूबेदारों को दण्ड देने के लिए जिन्होंने उसकी सत्ता को स्वीकार नहीं किया था, बहलोल ने कठोर सैनिकवादी नीति का अनुसरण किया। विद्रोही सूबेदारों को आतंकित करने के उद्देश्य से वह अनेक बार आसपास के जिलों में स्वयं सेना लेकर गया।

अपने अफगान सरदारों को भी वह काबू में रख सका। उन्हें बड़ी–बड़ी जागीरें देना तो सम्भवतः आवश्यक था। परन्तु उसके साथ ही उसने उनमें अपनी श्रेष्ठता को बनाये रखने में सफलता प्राप्त की। बहलोल सम्पूर्ण प्रभुत्व–सम्पन्न सुल्तान के आदर्श को तो अपने सम्मुख न रख सका लेकिन उन्हें नियन्त्रित रखने में सफल हुआ।

2.4.2 युद्ध एवं विजयें :

सबसे पहले उसने अहमद खाँ मेवाती पर आक्रमण किया जो मेवात पर शासन करता था। भयभीत होकर अहमद खाँ ने समर्पण कर दिया। सुल्तान ने उसके छः ज़िले छीनकर दिल्ली में मिला लिए। इसके उपरान्त सुल्तान ने सम्भल के दरिया खाँ के विरुद्ध कूच किया, दरिया खाँ ने समर्पण कर दिया और उसके भी सात परगने छीन लिए गए। उसके बाद बहलोल ने अलीगढ़ के ईसा खाँ का दमन किया। दोआब से कर वसूलने में उसे कुछ कठिनाई हुई। मेनपुरी, इटावा, भोगाँव, चन्दारवार आदि में व्यवस्था कायम करने में सफल हुआ। मुल्तान और सरहिन्द के उपद्रवों को भी दवा दिया गया।

'तारीख–ए–सलातीन–ए–अफगान' के लेखक अहमद यादगार का कहना है कि बहलोल ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर राणा को पराजित किया। किन्तु यह सत्य प्रतीत नहीं होता है। बहलोल ने तुगलक कालीन प्रांतों को, जो दिल्ली से प्रथक हो चुके थे, पुनः जीतने का प्रयास नहीं किया। यह एक यर्थाथवादी नीति थी क्योंकि मालवा या गुजरात जीतने के लिए उसके पास पर्याप्त शक्ति नहीं थी। लेकिन जौनपुर से संघर्ष के कई कारण थे। शर्की–वंश के महमूदशाह ने सैयद वंश के अंतिम सुल्तान अलाउद्दीन की पुत्री से विवाह कर लिया था। वह घमण्डी स्त्री अपने पिता का बदला लेना चाहती थी, इसलिए उसने अपने पति को दिल्ली पर आक्रमण करने तथा वहाँ से बहलोल को

मार भगाने के लिए उत्तेजित किया, दूसरे दिल्ली और दोआब के अनेक अमीरों का उसे गुप्त रुप से समर्थन प्राप्त था। तीसरे, उसकी शक्ति बहलोल से कम नहीं थी। चौथे, हुसैनशाह शर्की एक महात्वाकांक्षी शासक था। 1458 ई0 में मुहम्मद शाह की हत्या के बाद अमीरों ने उसे जौनपुर की गद्दी पर बैठाया था। उसके शासनकाल में दिल्ली और जौनपुर की प्रतिद्वन्द्विता पराकाष्ठा पर पहुँच गयी। हुसैनशाह ने दिल्ली पर आक्रमण किया और इस बार भी दोनों पक्षों में संधि हो गई जो चार वर्षों तक चली। इसके बाद भी संघर्ष चलता रहा और निर्णय नहीं हो सका। अंत में 1471 ई0 में हुसैनशाह ने शक्तिशाली सेना के साथ दोआब में प्रवेश किया। बहलोल ने पुनः समझौते की नीति अपनाई और गंगा नदी के समस्त पूर्वी क्षेत्र पर शर्की सुल्तान का दावा स्वीकार कर लिया। जब शर्की सेना वापस जा रही थी, बहलोल ने उस पर अचानक आक्रमण करके पराजित कर दिया। इस विजय के बाद वह जौनपुर तक बढ़ता चला गया और समस्त शर्की राज्य पर अधिकार कर लिया। यह बहलोल की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। इससे उसके राज्य का क्षेत्रफल दूना हो गया। उसने अपने बड़े पुत्र बारबकशाह को जौनपुर का सूबेदार नियुक्त किया। उसके बाद उसने कालपी, धोलेपुर, बाड़ी, अलापुर को सल्तनत में सम्मिलित किया।

सन् 1489 में बहलोल ने ग्वालिर पर आक्रमण किया। वह ग्वालियर जीतने में सफल नहीं हुआ और ग्वालियर के राजा मानसिंह से खिराज भेंट लेकर वापस हो गया। अभी वह मार्ग में ही था कि बीमार हो गया और जुलाई 1489 ई0 में मृत्यु हो गयी।

2.5 राजत्व सिद्धान्त :

बहलोल लोदी का राजत्व सिद्धान्त अफगान राजत्व सिद्धान्त का आदर्श नमूना है। अफगान राजत्व सिद्धान्त, तुर्क राजत्व सिद्धान्त से भिन्न था। तुर्की सुल्तान निरंकुश और स्वेच्छाचारी होने का दावा करते थे। उनके सरदार उनके कर्मचारी, सलाहकार, समर्थक और अनुयायी थे परन्तु उनमें से कोई भी सुल्तान की बराबरी या राज्य के शासन में साझेदारी का दावा नहीं कर सकता था। सुल्तान इल्तुतमिश से लेकर सैयद–वंश के शासकों तक ने इस श्रेष्ठता का दावा किया था और बलबन तथा अलाउद्दीन खलजी जैसे शक्तिशाली शासक अपने में देवत्व के अंश का दावा करते थे। इसके विपरीत अफगान सरदार सुल्तान को अपने में से ही एक बड़ा सरदार मानते थे। वे सुल्तान में देवत्व का अंश मानने के लिए तैयार न थे। वे शक्ति, प्रभाव और राज्य के शासन में अपना हिस्सा समझते थे। बहलोल के सिंहासन पर बैठने तक अफगान, मुल्तान, पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में प्रभावशाली हो गए थे। बहलोल सरदारों का नेता था और सफलतापूर्वक उनका नेतृत्व कर सका। परन्तु उसकी शक्ति

अफगान सरदारों के समर्थन और सहयोग पर निर्भर थी। इस कारण उसने अफगान सरदारों के स्वतन्त्रता और समानता के विचारों के साथ समझौता कर लिया उसका कहना था कि वह अमीरों में से ही एक अमीर है। वह अपने मुख्य सरदारों के साथ कालीन पर बैठता था। अपने अमीरों को 'मसनद–ए–आली' पुकारता था, अपने किसी भी अमीर के बीमार अथवा अप्रसन्न हो जाने पर उसके निवास स्थान पर जाता था, विजय में लूटा हुई सम्पत्ति में उन्हें बराबर का हिस्सा देता था। अफगान परम्परा के अनुसार व्यक्तिगत अंगरक्षक नहीं रखता था, उसका भोजन प्रत्येक दिन किसी न किसी अमीर के यहाँ से आता था और घोड़े पर सवार होते समय उसका कोई न कोई साथी अपना घोड़ा देता था। फरिश्ता के अनुसार उसका कहना था कि इतना ही पर्याप्त है कि मेरा नाम राज्य के साथ जुड़ा हुआ है।'' मुश्ताकी ने लिखा है कि ''वह दरवार में सिंहासन पर नहीं बैठा और उसने अमीरों को खड़ा रहने से मना कर दिया।'' मुश्ताकी फिर आगे लिखता है कि ''यदि कोई अमीर सुल्तान से अप्रसन्न हो जाता था तो सुल्तान उसके घर जाता था, अपनी तलवार निकालकर उसके सामने रख देता था–यही नहीं बल्कि पगड़ी उतार कर उससे क्षमा याचना करता था।'' इस प्रकार बहलोल ने अपने सरदारों के साथ सुल्तान की भांति व्यवहार न करके उन्हें बड़ी–बड़ी जागीरें एवं सम्मान प्रदान किए तथा उनकी प्रकृति एवं अफगान परम्परा के अनुसार व्यवहार करके उन्हें प्रसन्न किया और उन्हें अपना समर्थक बनाए रखने में सफलता प्राप्त की। के0ए0 निज़ामी ने लिखा है कि बहलोल का शासन बिरादरी पर आधारित था।

इस प्रकार बहलोल का राजत्व सिद्धान्त अफगान परम्परा के अनुसार ही सरदारों की समानता पर आधारित था और ऐसी स्थिति में उसकी शासन व्यवस्था राजतन्त्रीय न होकर कुलीनतन्त्रीय थी और भारत में उस समय तक मान्य हिन्दू अथवा तुर्की शासन–व्यवस्था के प्रतिकूल थी।

2.6 सारांश :

बहलोल साहसिक सैनिक तथा योग्य प्रशासक था। उसने दिल्ली सल्तनत को पुनः संगठित करने में बुद्धिमतापूर्ण तथा यथार्थवादी नीति का अनुसरण किया। उसने उदारता तथा कठोरता का यथास्थान प्रयोग करके विद्रोही जागीदारों पर नियन्त्रण स्थापित किया। अफगान अमीरों के प्रति उसकी निती अत्यन्त सफल रही। उसने राजस्थान, मालवा आदि क्षेत्रों को जीतने की महत्वाकांक्षा से स्वयं को मुक्त रखा और उतना ही प्राप्त करने का प्रयत्न किया जितना सम्भव था। यही उसकी सफलता का आधार था। तारीखे–दाऊदी का लेखक अब्दुल्ला उसकी विनयशीलता की प्रशंसा करता है।

बहलोल की दो मुख्य सफलताएं थीं। प्रथम उसने दिल्ली सल्तनत की प्रतिष्ठा तथा शाख का जो परवर्ती तुगलक तथा सैयद सुल्तानों के समय में बहुत नीची गिर चुकी थी, पुनरूत्थान किया। जौनपुर राज्य की विजय तथा उसे दिल्ली सल्तनत में मिलाना उसकी दूसरी मुख्य सफलता थी।

2.7 अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. बहलोल लोदी कौन था ?
2. बहलोल लोधी की उपलब्धियों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
3. बहलोल का राजत्व सिद्धान्त क्या था ?
4. सुल्तान बहलोल लोदी के शासनकाल की मुख्य घटनाओं का वर्णन कीजिए।

बोध–प्रश्न :

निम्नलिखित कथनों को पढ़कर सही (√) एवं गलत (x) के चिह्न लगाओ–

(i) बहलोल कोदी अफगानों की शाखा 'शाहूखेल' से सम्बन्धित था। ( )

(ii) बहलोल, जौनपुर को दिल्ली राज्य में सम्मिलित नहीं कर सका। ( )

(iii) बहलोल ने अफगानों को बड़ी–बड़ी जागीरें दीं। ( )

2.8 बोध–प्रश्नों के उत्तर : (i) √ (ii) x (iii) √

2.9 सहायक ग्रन्थ :

1. Thomas, Edward; The chronicles of the Pathan kings of Delhi.
2. Dorn : History of the Afghans.
3. Elliot & Dowson : History of India, etc., Vol.-IV
4. Haig, Woolsely : Cambridge, History of India, Vol.-III
5. वर्मा, हरिश्चन्द्र : मध्यकालीन भारत, भाग–1.
6. श्रीवास्तव, आर्शीवादी लाल : भारत का इतिहास 1000–1707.
7. A.B. Pandey : The first Afghan Empire.

इकाई तृतीय– सिकन्दर लोदी का जीवन एवं उपलब्धियाँ

इकाई की रूपरेखा :

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 आरम्भिक जीवन

3.3 समस्याएँ

3.4 कार्य एवं उपलब्धियाँ

3.4.1 विरोधियों का दमन

3.4.2 बारबकशाह का दमन

3.4.3 बिहार विजय

3.4.4 अन्य विजयें

3.4.5 अफगानों पर नियन्त्रण

3.5 धार्मिक नीति

3.6 मृत्यु

3.7 सारांश

3.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.9 बोध–प्रश्नों के उत्तर

3.10 सहायक ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे–

- सिकन्दर लोदी का प्रारम्भिक जीवन
- सिकन्दर लोदी के कार्य एवं उपलब्धियाँ
- सिकन्दर लोदी की समस्याएं
- सिकन्दर लोदी की धार्मिक नीति
- सिकन्दर लोदी का चरित्र

3.1 प्रस्तावना :

बहलोल लोदी ने अपनी मृत्यु के समय अपने पुत्र निजामशाह को उत्तराधिकारी मनोनीत किया था। कुछ अमीरों ने उसके ज्येष्ठ पुत्र बारबकशाह के पक्ष में सुल्तान से

निवेदन किया, लेकिन बहलोल ने अपने निर्णय में कोई परिवर्तन नहीं किया। बहलोल की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकार के प्रश्न पर अमीरों में वाद–विवाद हो गया जो दल बारबक का पक्षधर था, बहुमत में था। दूसरा दल जो निज़ाम खाँ को सुल्तान बनाना चाहता था अल्पमत में था। बहुमत दल ने निज़ाम शाह का विरोध इस आधार पर किया कि निज़ामशाह की माँ जैबन्द एक सुनार की पुत्री थी। लेकिन निज़ाक की माँ ने स्वयं उपस्थित होकर अपने पुत्र के दावे पर ज़ोर दिया। इस पर बहुमत पक्ष के नेता ईसा खाँ ने उसके प्रति कठोर भाषा का प्रयोग किया, जिससे अन्य उपस्थित अमीर नाराज़ हो गए और सहानुभूतिपूर्ण वातावरण के बनने से निज़ामशाह के पक्ष में बहुमत हो गया। इसका लाभ उठाकर निज़ामशाह, सिकंदरशाह की उपाधि के साथ 17 जुलाई, 1489 ई0 को सिंहासन पर बैठा।

3.2 आरम्भिक जीवन :

सुल्तान बहलोल लोदी के नौ पुत्र थे। इनमें सबसे बड़ा वायजीद था, लेकिन उसकी मृत्यु बहलोल के जीवन काल में ही हो गई थी। अन्य पुत्रों में बारबक शाह जौनपुर में और आलम खाँ कड़ा तथा मानिकपुर का अधिकारी था। इनमें निज़ाम सबसे योग्य था और वह राजधानी में ही सुल्तान के नायब का काम देखता था। सुल्तान की मृत्यु के बाद मनोनीत उत्तराधिकारी निज़ाम शाह का विरोध ईसा खाँ लोदी (बहलोल का चचेरा भाई) गुट ने किया। विरोध का अधिकार उसकी माँ का सुनार की पुत्री होना बताया, लेकिन वज़ीर खाने आज़म उमर खाँ सरवानी ने उसका साथ दिया। खानेखाना फरमूली, खानेजहाँ लोदी आदि सरदारों ने निज़ाम खाँ का साथ दिया। इस प्रकार परिस्थितियों को अपने पक्ष और नियन्त्रण में कर 17 जुलाई 1489 ई0 को निज़ाम खाँ, सुल्तान सिकन्दरशाह के नाम से गद्दी पर बैठा।

3.3 समस्याएँ :

सिकन्दरशाह निसंदेह बहलोल के पुत्रों में योग्यतम था। सुल्तान बनने के पश्चात उसने बहलोल के निर्णय को उचित सिद्ध किया लेकिन उसके सम्मुख विभिन्न समस्याऐं थीं–

(1) बहलोल ने अपने एक पुत्र बारबकशाह को जौनपुर का सूबेदार नियुक्त किया था। सिकन्दरशाह के सुल्तान बनने पर यह आवश्यक था कि बारबकशाह सिकन्दरशाह की अधीनता स्वीकार करे जिससे लोदी साम्राज्य की एकता बनी रहे। सिकन्दरशाह इस कार्य को शांतिपूर्ण उपायों से समझा–बूझाकर करना चाहता था। लेकिन बारबकशाह ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली और सिंहासन को प्राप्त करने के प्रयास कर रहा था।

(2) दूसरी समस्या महत्वाकांक्षी अमीरों की थी जो राज्य की नीतियों में हस्तक्षेप कर रहे थे। सिकन्दरशाह के विरुद्ध एक दल था जिसने उत्तराधिकारी के मामले में उसका विरोध किया था।

(3) ग्वालियर, बयाना ऐसे क्षेत्र थे जो लगभग स्वतन्त्र स्थिति में थे और जिनसे सैनिक अभियानों द्वारा ही खराज़ वसूल किया जा सकता था।

(4) राजकोष रिक्त था। बहलोल की उदारता, राजस्व की नियमित आय तथा संग्रह न होने के कारण खज़ाना खाली था।

3.4 कार्य एवं उपलब्धियाँ :

सिकन्दरशाह ने यह सिद्ध कर दिया कि वह अपने पिता के पुत्रों में से योग्यतम था। उसने उन विरोधी सरदारों को जो उसे सुल्तान बनाने के पक्ष में नहीं थे और उन दावेदारों को जो सिंहासन प्राप्त करने के लिए उत्सुक थे, समाप्त किया। उसने अफगान सरदारों के प्रभाव और शक्ति को दबाकर सुल्तान की प्रतिष्ठा को स्थापित किया। बहलोल ने साम्राज्य–विस्तार के कार्य को आरम्भ किया था, सिकन्दर ने उस कार्य को आगे बढ़ाया। राज्य विस्तार तथा सुल्तान की शक्ति और प्रतिष्ठा की स्थापना की दृष्टि से सिकन्दरशाह अपने पिता से आगे बढ़ गया और लोदी–वंश के शासकों में श्रेष्ठ शासक कहलाने का अधिकारी बना।

3.4.1 विरोधियों का दमन :

उसने अपने चाचा आलम खाँ को टपरी छोड़ने पर बाध्य किया और जब वह ईसा खाँ की शरण में चला गया तब सिकन्दर ने उसे आश्वासन देकर अपनी ओर मिला लिया और उसे इटावा की जागीर दे दी, यद्यपि वह बाद में वहाँ से गुजरात भाग गया। उसने ईसा खाँ को एक युद्ध में परास्त किया और युद्ध में घाव लग जाने के कारण ईसा खाँ की शीघ्र मृत्यु हो गयी। उसने अपने भतीजे आज़म हुमायूँ को परास्त करके उससे कालपी छीन लिया। झालरा के विरोधी सरदार तातार खाँ को भी उसने परास्त किया यद्यपि उसकी जागीर उसे वापस दे दी गयी। इस प्रकार एक वर्ष के अर्न्तगत ही सिकन्दरशाह ने अपने विरोधी सरदारों और गद्दी के दावेदारों को समाप्त कर दिया।

3.4.2 बारबकशाह का दमन :

अपने बड़े भाई तथा जौनपुर के शासक बारबकशाह से उसने यह मांग की कि वह उसकी अधीनता को मान ले जिससे राज्य का विभाजन न हो। परन्तु जब बारबकशाह ने इस बात को मानने से इन्कार कर दिया तब सिकन्दर ने जौनपुर पर आक्रमण किया। युद्ध में बारबकशाह की पराज्य हुई। सिकन्दरशाह ने जौनपुर में शासन

करने का अधिकार बारबकशाह को ही दे दिया यद्यपि उसने जौनपुर दरबार में अपने व्यक्तियों को नियुक्त करके और वहाँ अपने सरदारों में जागीरें वितरित करके उसे अपने नियन्त्रण में रखने का प्रबन्ध किया। परन्तु बारबकशाह अयोग्य सिद्ध हुआ। जौनपुर के हिंदू जमींदारों ने जुगा के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया और वह भाग खड़ा हुआ। सिकन्दशाह ने उस विद्रोह को दबाया, जुगा को बिहार में हुसैनशाह शर्की की शरण में भाग जाने के लिए बाध्य किया और जौनपुर में एक बार पुनः बारबकशाह को शासक नियुक्त किया। परन्तु बारबकशाह पुनः असफल हुआ और हिन्दू जमींदारों (जो शर्की–वंश के शासक हुसैनशाह के पक्ष में थे) ने उसे भागने के लिए बाध्य किया। सिकन्दरशाह ने विद्रोह को दबा दिया लेकिन इस बार बारबकशाह को पकड़कर कारागार में डाल दिया गया और जौनपुर में एक सूबेदार की नियुक्ति कर दी गयी।

3.4.3 बिहार विजय :

जौनपुर के विद्रोहों ने सिकन्दरशाह को बिहार को जीतने का अवसर प्रदान किया। विद्रोही जमींदारों के नेता जुगा ने भागकर हुसैनशाह शर्की के पास शरण ली थी। उस अवसर पर सिकन्दरशाह ने हुसैनशाह को बिहार भागने के लिए बाध्य किया था। हिन्दुओं के दुबारा विद्रोह करने पर सिकन्दरशाह को बहुत क्षति उठानी पड़ी। उस अवसर को उपयुक्त समझकर हुसैनशाह ने आगे बढ़कर (1494 ई0 में) सिकन्दरशाह पर आक्रमण किया, परन्तु बनारस के निकट एक युद्ध में सिकन्दरशाह ने उसे परास्त कर दिया। इस बार सिकन्दरशाह ने उसका पीछा किया और उसे बंगाल में शरण लेने के लिए बाध्य किया। बिहार को दिल्ली सल्तनत में सम्मिलित कर लिया गया।

3.4.4 अन्य विजयें :

बिहार से सिकन्दरशाह ने तिरहुत पर आक्रमण किया। वहाँ के राजा ने उसके अधिपत्य को स्वीकार कर लिया।

हुसैनशाह शर्की के बंगाल भाग जाने से दिल्ली की सेना ने बंगाल की सीमा तक उसका पीछा किया। बंगाल का शासक अलाउद्दीन हुसैनशाह बिहार पर दिल्ली के अधिकार को पसन्द नहीं करता था और उसने दिल्ली की सेना की प्रगति को रोकने के लिए अपने पुत्र दानियाल के नेतृत्व में एक सेना भेजी। परन्तु बिना युद्ध दोनों पक्षों में एक समझौता हो गया जिसके अनुसार दोनों पक्षों ने एक–दूसरे की सीमाओं पर आक्रमण न करने का वादा किया, बिहार को सिकन्दर के राज्य की सीमाओं में मान लिया गया और अलाउद्दीन हुसैनशाह ने यह भी वादा किया कि वह दिल्ली के सुल्तान के शत्रुओं को अपने राज्य में शरण नहीं देगा।

मालवा के आन्तरिक संघर्ष के कारण सिकन्दर को इस राज्य में हस्तक्षेप करने का अवसर मिला परन्तु उसने मालवा पर आक्रमण नही किया। चंदेरी पर उसने अवश्य अधिकार कर लिया।

राजपूत राज्यों के विरूद्ध भी उसे कुछ सफलता मिली। उसने धौलपुर, मन्दरेल, उतगिरी नरवर और नागौर को जीतने में सफलता प्राप्त की परन्तु समय–समय पर ग्वालियर के राजा को परास्त करके और उससे राजस्व वसूल करके भी वह ग्वालियर को अपने राज्य में सम्मिलित नहीं कर सका। 1504 ई0 में उसने राजस्थान के शासकों पर अपने अधिकार को सुरक्षित रखने के लिए एक नवीन नगर आगरा बसाया। वहाँ पर उसने एक किले का भी निर्माण कराया जो बादलगढ़ का किला के नाम से मशहूर था। 1506 ई0 में आगरा सिकन्दर की राजधानी बना।

सिकन्दर लोदी जौनपुर को दिल्ली के अधीन करने में सफल हुआ और राजपूत शासकों के विरूद्ध उसकी सफलताओं ने उसे सम्मान प्रदान किया। सम्भवतया, सिकन्दर अपनी शक्ति की सीमाओं को समझता था और मुसलमान राज्यों से संघर्ष भी नहीं करना चाहता था। निकट के बंगाल और मालवा के राज्यों के प्रति उसका व्यवहार उसकी इस नीति के प्रमाण थे।

3.4.5 अफगानों पर नियन्त्रण :

सिकन्दर लोदी की एक मुख्य समस्या अफगान सरदारों की स्वतन्त्र और विद्रोह प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने की थी। उसने सभी सूबेदारों और जागीरदारों को अपनी आय और व्यय का विवरण देने की आज्ञा दी। जो भी सरदार राज्य का धन गबन करता था, उसे दण्डित किया जाता था। जौनपुर के सूबेदारों को इसी आधार पर दण्डित किया गया और उनसे राज्य का धन वसूल किया गया। उसने सिंहासन पर बैठना आरम्भ किया और सभी अमीरों को दरबार में अथवा दरबार के बाहर उसके आदेशों के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए बाध्य किया। उसके आदेशों को प्राप्त करने के लिए उसके अमीर अपने स्थान से छः मील दूर से आते थे। न्याय में वह छोटे–बड़े का कोई अन्तर नहीं करता था। इससे भी उसे सरदारों को अपने अनुशासन में रखने में सफलता मिली परन्तु उनको नियन्त्रण में रखने का श्रेय उसके गुप्तचर विभाग को जाता है। उसका गुप्तचर विभाग इतना श्रेष्ठ था कि जन–साधारण यह विश्वास करता था कि सुल्तान को विभिन्न सूचनाएं भूत–प्रेतों से प्राप्त होती हैं। जबकि वह वृद्ध और अनुभवी सरदारों का सम्मान करता था तथा अन्य सरदारों की भी व्यक्तिगत भावनाओं की परवाह करता था। उसका उद्देश्य केवल सुल्ताान की श्रेष्ठता को स्थापित करना था। वह अपने इस कार्य में सफल हुआ। एक अवसर पर प्रायः वाइस सरदारों ने षड्यन्त्र करके सिकन्दर को

गद्दी से हटाकर उसके छोटे भाई फतेह खाँ को सिंहासन पर बैठाने का प्रयत्न किया परन्तु फतेह खाँ ने अपनी माँ और अपने धार्मिक शिक्षक की सलाह पर इसकी सूचना सिकन्दरशाह को दे दी। वे सभी सरदार मार दिए गए अथवा राज्य से निष्कासित कर दिए गए। इसके पश्चात सिकन्दरशाह के समय में न कोई षड्यन्त्र हुआ और न कोई खुला विद्रोह।

3.5 धार्मिक नीति :

धार्मिक दृष्टि से सिकन्दर असहिष्णु सिद्ध हुआ। जब वह राजकुमार था तभी अपनी धार्मिक कट्टरता का परिचय दे चुका था। उसने हिन्दुओं को थानेश्वर के पवित्र तड़ाग में स्नान करने से रोकना चाहा और सुल्तान होने पर मंदिरों और मूर्तियों को नष्ट करने तथा उसके स्थान पर मस्जिदें खड़ी करने की नीति का अनुसरण किया। उसने नगरकोट के ज्वाला–मुखी मंदिर की मूर्ति को तोड़ डाला। उसने मथुरा, मन्दैल, उतगिरि, नरवर, चन्देरी आदि स्थानों पर मंदिरों को क्षति पहुँचायी। बोधन नामक एक हिन्दू को उसने यह कहने के अपराध में मृत्युदण्ड दिया कि ''हिन्दू–धर्म उतना ही सच्चा है जितना की इस्लाम।'' सिकन्दर ने हिन्दुओं को यमुना के घाटों पर स्नान करने की आज्ञा नहीं दी और नाइयों को उनकी दाढ़ियाँ बनाने से भी रोका। उसने मुसलमानों में प्रचलित कुप्रथाओं को रोकने का प्रयत्न किया। उसने मुहर्रम के 'ताज़िए' निकालना बन्द कर दिया और मस्जिदों को सरकारी संस्थाओं का रुप प्रदान करके उन्हें शिक्षा का केन्द्र बनाने का प्रयत्न किया। मुसलमान स्त्रियों को 'पीरों' और सन्तों की मज़ार पर जाने से रोक दिया था। आवेश में उसने शर्की–शासकों द्वारा बनवायी गयीं जौनपुर की सुन्दर मस्जिदों को भी तोड़ने के आदेश दे दिए थे, यद्यपि उलेमाओं के कहने से उसने अपने यह आदेश वापस ले लिए। उसके इन कार्यों को उसके उत्तराधिकार के समय विरोधियों द्वारा विधर्मी होने के आरोप से जोड़कर देखा जा सकता है। वह जीवन–पर्यन्त इन आरोपों से मुक्त होने का प्रयत्न करता प्रतीत होता है। दूसरी ओर आधुनिक इतिहासकार के.एस. लाल का उसके पक्ष में तर्क भी न्यायोचित प्रतीत होता है। वे लिखते हैं– ''15वीं सदी के अंत और 16वीं सदी के आरम्भ तक भारत का धार्मिक वातावरण बदल चुका था जो ईश्वर की समानता पर बल दे रहा था और हिन्दू–मुसलमान पास आ चुके थे। धार्मिक सहिष्णुता का विचार फैल रहा था। ऐसी स्थिति में सिकन्दरशाह के धार्मिक कट्टरता के कुछेक कार्य बहुत बुरे माने गए अन्यथा उसका व्यवहार अन्य मुसलमान शासकों की तुलना में अधिक धर्मान्धता का न था।'' जो भी हो सिकन्दरशाह द्वारा कट्टरता का परिचय देना एक बड़ी भूल ही नहीं थी बल्कि एक दुराग्रह भी था।

3.6 मृत्यु :

अपने शासनकाल के अंतिम दिनों में विभिन्न आक्रमण और युद्धों में व्यस्त रहने के कारण उसका स्वास्थ्य नष्ट हो गया। वह बयाना गया हुआ था, वहीं उसके गले में बीमारी हो गई। दिल्ली वापस आने पर भी वह ठीक नहीं हो सका और 21 नवम्बर, 1517 ई0 को उसकी मृत्यु हो गयी।

3.7 सारांश :

सिकन्दर एक योग्य और पराक्रमी शासक था। उसने सफलतापूर्वक सल्तनत को संगठित किया और उसका विस्तार किया। अमीरों के प्रति अपनी नीति में उसने अपने पिता बहलोल से भी अधिक सफलता प्राप्त की। निःसंदेह वह लोदी सुल्तानों में सबसे महान था। उसने राजपद की प्रतिष्ठा और शक्ति में वृद्धि की। अमीरों के विद्रोहों का उसने कठोरतापूर्वक दमन किया लेकिन विवेकपूर्ण नीति से उसने उनकी निष्ठा और समर्थन भी प्राप्त किया। उसका व्यक्तित्व आकर्षक और प्रभावशाली था। उसे विद्वानों की संगत पसंद थी और स्वयं कविता में रुचि रखता था। उसकी आज्ञानुसार संस्कृत के एक आयुर्वेद ग्रन्थ का फारसी में अनुवाद कराया गया जिसका नाम 'फरहंगे सिकन्दरी' रखा गया। वह 'गुलरुखी' उपनाम से कविताएं लिखा करता था। गान–विद्या में उसकी बड़ी रुचि थी और वह शहनाई सुनने का बहुत शौकीन था। उसके समय में गान–विद्या के एक श्रेष्ठ ग्रन्थ 'लज्जत ए सिकन्दरशाही' की रचना हुई। उसने अपने पिता के कार्य को पूरा किया। पंजाब जो बहलोल के काल में अशांत क्षेत्र था उसके शासन काल में शांत रहा। अपनी प्रशासनिक तथा सैनिक योग्यता से उसने बहलोल द्वारा अपने उत्तराधिकार के निर्णय का औचित्य सिद्ध कर दिया।

3.8 अभ्यासार्थ प्रश्नः

1. ''लोदी सुल्तानों में सिकन्दर लोदी महान था''– इस कथन की समीक्षा कीजिए।
2. सिकन्दर लोदी की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।
3. सिकन्दर लोदी के शासन और चरित्र का संक्षेप में विवरण दीजिए।
4. सिकन्दर लोदी के कार्यों को समीक्षा कीजिए।
5. सिकन्दर लोदी की धार्मिक नीति पर प्रकाश डालिए।

बोध–प्रश्न :

निम्नलिखित कथनों को पढ़कर सही (√) एवं गलत (x) के चिह्न लगाओ–

(i) सिकंदर लोदी हिन्दू माता से उत्पन्न था। ( )

(ii) सिकंदर लोदी ने आगरा नगर बसाया। ( )

(iii) धार्मिक दृष्टि से सिकंदर सहिष्णु था। ( )

(iv) सिकंदर लोदी अशिक्षित था। ( )

3.9 बोध–प्रश्नों के उत्तर : (i) √ (ii) √ (iii) x (iv) x

3.10 सहायक ग्रन्थ :

1. Thomas, Edward; The chronicles of the Pathan kings of Delhi.
2. Dorn : History of the Afghans.
3. Elliot & Dowson : History of India, etc., Vol.-IV
4. Haig, Woolsely : Cambridge, History of India, Vol.-III
5. वर्मा, हरिश्चन्द्र : मध्यकालीन भारत, भाग–1.
6. श्रीवास्तव, आर्शीवादी लाल : भारत का इतिहास 1000–1707.
7. शर्मा, एल.पी. : दिल्ली सल्तनत
8. A.B. Pandey : The first Afghan Empire.

इकाई चतुर्थ– इब्राहिम लोदी (1517–1526 ई0 तक) पानीपत का प्रथम युद्ध एवं दिल्ली सल्तनत का अंत

इकाई की रूपरेखा :

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 राज्यारोहण

4.3 जलाल खाँ का दमन

4.4 राजत्व का स्वरूप

4.5 अमीरों का दमन

4.6 मेवाड पर आक्रमण

4.7 पानीपत का प्रथम युद्ध

4.8 दिल्ली सल्तनत का अंत

4.9 सारांश

4.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.11 बोध–प्रश्नों के उत्तर

4.12 सहायक ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे–

- इब्राहिम लोदी और उसका राज्यारोहण
- इब्राहिम लोदी के राजत्व का स्वरूप
- इब्राहिम लोदी और उसकी उपलब्धियां
- पानीपत का प्रथम युद्ध
- दिल्ली सल्तनत का अंत

4.1 प्रस्तावनाः

सिकन्दरशाह की मृत्यु के पश्चात अमीरों ने एकमत से उसके ज्येष्ठ पुत्र इब्राहिम को निर्वाचित किया। इब्राहिम की योग्यता साहस और बहादुरी के बारे में कोई संदेह नहीं था। लेकिन अमीरों का एक दल जलाल खाँ का समर्थक था। जलाल खाँ इब्राहिम का छोटा भाई था और इस समय चंदेरी तथा कालपी का सूबेदार था।

सिकन्दरशाह की मृत्यु के समय जलाल खाँ भी आगरा में था। जब अमीरों ने इब्राहिम को सुल्तान निर्वाचित किया, तब इस दल ने साम्राज्य के विभाजन का प्रस्ताव भी रखा। इस प्रस्ताव में जलाल खाँ को जौनपुर का स्वतन्त्र शासक स्वीकार करने के लिए कहा गया। साम्राज्य के विभाजन के पीछे इन असंतुष्ट अमीरों का स्वार्थ था और वे विभाजन के द्वारा अपना प्रभुत्व पुनः स्थापित करना चाहते थे।

4.2 राज्यारोहण :

अमीरों की सम्मति से यह निश्चय किया गया कि दिल्ली का सुल्तान इब्राहिम होगा और जौनपुर का सुल्तान उसका भाई जलाल खाँ होगा। वे दोनों एक ही माता के पुत्र थे। इस योजना के अनुसार सिकन्दरशाह का सबसे बड़ा पुत्र इब्राहिम लोदी 21 नवम्बर 1517 ई0 को इब्राहिमशाह की उपाधि धारण कर दिल्ली का सुल्तान बना। इब्राहिम, लोदी वंश का अंतिम शासक था। उसका शासन अपने भाई जलाल खाँ के संघर्ष से आरम्भ हुआ।

4.3 जलाल खाँ का दमन :

साम्राज्य का विभाजन अफगान शक्ति के लिए हानिकारक था। अमीरों के दबाव से बाध्य होकर सुल्तान ने विभाजन को स्वीकार किया था लेकिन शीघ्र ही वह पश्चाताप करने लगा। उसके प्रभावशाली अमीर खानेजहाँ लोहानी ने राज्य विभाजन की मूखर्तापूर्ण नीति की कठोर शब्दों में निंदा की और जलाल खाँ को वापस बुलाने पर जोर दिया। इब्राहिम ने यह काम हैवात खाँ के सुपूर्द किया। हैवात खाँ समझा–बुझाकर जलाल खाँ को दिल्ली लौटाने में सफल नहीं हुआ तो उसने कूटनीति से काम लिया। अपनी चतुर नीति से उसने जलाल खाँ के बहुत से अनुयायियों को अपनी ओर फोड़ लिया। उन्होंने जलाल खाँ को जौनपुर छोड़कर कालपी जाने को बाध्य किया, जहाँ उसने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया और सुल्तान की उपाधि धारण की। उसने आजम हुमायूँ शेरवानी को जो उस समय सुल्तान इब्राहिम की ओर से कालिंजर को घेरे हुए था, अपने पक्ष में कर लिया। अपनी संयुक्त सेनाओं से जलाल खाँ और शेरवानी ने अवध पर आक्रमण किया। इब्राहिम को स्वयं विद्रोहियों का दमन करने के लिए जाना पड़ा। किन्तु सौभाग्य से आजम हुमायूँ शेरवानी ने जलाल का साथ छोड़ दिया और इब्राहिम से मिल गया। जलाल खाँ ने आगरा पर आक्रमण किया। असफल जलाल खाँ को ग्वालियर के राजा के यहाँ शरण लेनी पड़ी। इब्राहिम ने अपने भाई को गिरफ्तार करने तथा किले पर अधिकार करने के दोहरे उद्देश्य से ग्वालियर पर आक्रमण उचित समझा। लेकिन जैसे ही वह निकट पहुँचा जलाल खाँ ग्वालियर से मालवा को भाग गया। किले का घेरा चल रहा था, उसी समय मालवा के सुल्तान के दुर्व्यवहार से तंग आकर जलाल खाँ

गढ़कण्टक के गौड़ राज्य की ओर भाग गया। किन्तु गौड़ों ने उसे गिरफ्तार कर लिया और बन्दी बनाकर इब्राहिम के पास भेज दिया। सुल्तान ने उसे हॉसी में कैद रखने की आज्ञा दी, किन्तु मार्ग में ही उसका वध कर दिया गया।

4.4 राजत्व का स्वरुप :

सुल्तान इब्राहिम ने कठोर नीति का अनुसरण किया। जलाल खाँ और विद्रोही सरदारों का दमन आवश्यक था लेकिन इस कठोर नीति के साथ सिकन्दरशाह के समान उदारता का विवेकपूर्ण सम्मिश्रण भी आवश्यक था। उसका दमन केवल संदेहों पर आधारित था और चरम सीमा तक पहुँच गया। इससे अमीरों की वह शक्ति तथा समर्थन समाप्त हो गया जिसके आधार पर बहलोल ने साम्राज्य निर्माण किया था और सिकन्दर ने साम्राज्य का संगठन तथा विस्तार किया था। इब्राहिम ने तुर्क सुल्तानों के समान पूर्ण निरंकुशता की स्थापना का निश्चय किया। उसने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि सुल्तानों के न तो कोई सम्बन्धी होते हैं और न उसका कोई कबीला होता है, सब व्यक्ति और कबीले उसके सेवक होते हैं। इब्राहिम उच्च सिंहामन पर बैठता था। उसका आदेश था कि जब तक सुल्तान दरबार में उपस्थित हो कोई भी अमीर बैठ नहीं सकता। उन्हें विनयपूर्ण मुद्रा में हाथ बांधे खड़े रहना पड़ता था। स्वाभिमानी और स्वतन्त्रता प्रिय अफगानों के लिए यह स्थिति अत्यन्त असन्तोषजनक थी। इब्राहिम ने पुराने अमीरों को समाप्त कर नवीन आज्ञाकारी अमीर वर्ग बनाने का प्रयास किया। पुराने अमीर वर्ग ने विरोध किया जिसका परिणाम अंततः लोदी साम्राज्य का पतन था।

4.5 अमीरों का दमन :

आजम हुमायूँ जलाल खाँ से जा मिला था और फिर उसे छोड़कर सुल्तान से संधि कर ली थी। इब्राहिम अपने प्रति उसके इस अस्थायी द्रोह को न भूल सका। उसने आजम हुमायूँ और उसके पुत्र फतेह खाँ को ग्वालियर बुलाया और कारागार में डाल दिया। सिकन्दर के समय के प्रमुख अमीर मियाँ भोबा को उसने पहले ही कैद कर लिया था। उसके इस व्यवहार से उत्तेजित होकर आजम हुमायूँ के एक दूसरे पुत्र इस्लाम खाँ ने विद्रोह कर दिया। अपने पिता की फौज का सेनापतित्व लेकर उसने आगरा के सूबेदार अहमद खाँ पर आक्रमण कर दिया। उसी समय आजम हुमायूँ लोदी नाम के दो अन्य सरदार सुल्तान का पक्ष त्याग कर लखनऊ में अपनी जागीरों में चले गए और इस्लाम खाँ से जा मिलने की तैयारियाँ करने लगे। इन दो विद्रोहियों के विरुद्ध जो सेना सुल्तान ने भेजी वह पराजित हुई और भारी क्षति उठाकर पीछे लौटने पर बाध्य हुई। सुल्तान को अन्य अमीरों पर संदेह हो गया इसलिए मूर्खतावश उसने उन्हें चेतावनी दी कि यदि तुम इस विद्रोह को न दबा सके तो तुम्हारे साथ भी विद्रोहियों जैसा बर्ताव

किया जायेगा, इसके उपरांत वह स्वयं पचास हजार की सेना लेकर युद्ध क्षेत्र में उतरा। विद्रोहियों ने भी बड़ी सेना एकत्रित कर ली थी। विद्रोही नेताओं ने आजम हुमायूँ शेरवानी की रिहाई की मांग की किन्तु सुल्तान इस पर राजी नहीं हुआ। परिणाम स्वरुप भयंकर युद्ध हुआ। 'मखजाने अफगना' नामक ग्रन्थ का लेखक अहमद यादगार इन शब्दों में युद्ध का वर्णन करता है, ''लाशों के ढेर पर ढेर लग गए और युद्ध क्षेत्र उनसे ढक गया, पृथ्वी पर पड़े हुए सिरों की संख्या कल्पनातीत थी। मैदान में रक्त की नदियां बहने लगीं और इसके बाद दीर्घकाल तक जब कभी हिन्दुस्तान में कोई भयंकर युद्ध हुआ तो लोग यही कहते थे कि किसी भी युद्ध की तुलना इस युद्ध से नहीं की जा सकती। इनमें भाई ने भाई और पिता ने पुत्र के विरुद्ध युद्ध किया, धनुष–बाण अलग फेंक दिए गए और भालों, तलवारों, चाकुओं और बरछों से नरसंहार हुआ। अन्त में इब्राहिम की विजय हुई। इस्लाम खाँ मारा गया और सैयद खाँ बन्दी बना लिया गया।

इस सफलता ने इब्राहिम को पहले से भी अधिक धृष्ट बना दिया और अन्य अमीरों को दण्ड देने के लिए प्रोत्साहित किया। दुर्भाग्य से आजम हुमायूँ शेरवानी तथा कुछ अन्य अमीर करागार में ही मर गये जिससे चारों ओर प्रतिरोध और विद्रोह की ज्वाला धधकने लगी। बिहार में सूबेदार दरिया खाँ लोहानी, खानेजहाँ लोदी, मियाँ हुसैन करमाली तथा अन्य अमीरों ने विद्रोह कर दिया।

चन्देरी में शेख हसन करमाली के वध की आज्ञा देकर सुल्तान ने एक और मूर्खतापूर्ण कार्य किया। उससे विद्रोहियों को विश्वास हो गया कि जब तक सुल्तान सिंहासन पर बैठा है उनका जीवन और सम्मान सुरक्षित नहीं है। वे उसे पदच्युत करने के षड्यंत्र करने लगे। विद्रोहियों के नेता दरिया खाँ की इसी समय मृत्यु हो गयी किन्तु उसके पुत्र बहादुर खाँ ने स्वयं को मुहम्मदशाह के नाम से सुल्तान घोषित कर दिया। अनेक विद्रोही उसके झण्डे के नीचे एकत्रित हो गए और उसकी सेना की संख्या एक लाख धुड़सवार हो गई। उसने बिहार से लेकर सम्भल तक के समस्त प्रदेश पर अधिकार कर लिया। गाजीपुर का सूबेदार नासिर खाँ लोहानी भी उससे जा मिला।

पंजाब के सूबेदार दौलत खाँ लोदी ने भी विद्रोह कर दिया। उसका पुत्र गाजी खाँ दिल्ली के निकट था। उसने अपने पिता को सूचना दी कि यदि इब्राहिम बिहार के विद्रोह को दबाने में सफल हुआ तो आपको भी लाहौर से वंचित कर देगा। इसी भय के कारण दौलत खाँ ने अपने को स्वतन्त्र कर लिया और काबुल के राजा बाबर से बातचीत आरम्भ कर दी और उसे भारत पर आक्रमण करने तथा इब्राहिम को सिंहासनाच्युत करने के लिए आमन्त्रित किया। बाबर स्वयं भारत को जीतने का इच्छुक था, इसलिए उसने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। सम्भवतः दौलत खाँ लोदी समझता था, बाबर

आयेगा और लूटपाट कर वापस चला जायेगा तथा मुझे पंजाब में अपनी शक्ति स्थापित करने का अवसर मिल जायेगा। उसी समय आलम खाँ नामक एक अन्य अफगान अमीर जो सुल्तान इब्राहिम का चाचा था, मैदान में आया। वह भी दिल्ली का सिंहासन हस्तगत करने की अभिलाषा रखता था। इस उद्देश्य से उसने भी बाबर से बातचीत आरम्भ कर दी।

4.6 मेवाड पर आक्रमण :

इब्राहिम ने राजस्थान के प्रमुख राज्य मेवाड़ को भी जीतने का प्रयास किया था। सम्भवतः उसका उद्देश्य मालवा को जीतना था। लेकिन मालवा को जीतने के लिए मेवाड़ को परास्त करना आवश्यक था। इस समय मेवाड पर पराक्रमी राणा सांगा का राज्य था। इब्राहिम ने राणा सांगा के विरुद्ध एक शक्तिशाली सेना भेजी जिसमे कई प्रमुख अफगाान सरदार थे। राजपूतों ने इस सेना को बुरी तरह पराजित किया और उसे खदेड़ दिया। इसके बाद इब्राहिम ने स्वयं आक्रमण किया लेकिन वह भी खटोली में, बूँदी के निकट पराजित हुआ। इस युद्ध में राणा को एक बाजू खोना पड़ा और तीर पैर में लगने के कारण वह लंगड़ा हो गया। आक्रमणकारी को पराजित करने के बाद राजपूत लौट गये। इसके बाद राणा सांगा ने चंदेरी पर अधिकार कर लिया।

4.7 पानीपत का प्रथम युद्ध :

बाबर ने 1504 ई0 में काबुल पर अधिकार कर लिया था। इसके बाद भी वह समरकन्द को जीतने का प्रयास करता रहा लेकिन 1512 ई0 के बाद उसे स्पष्ट हो गया था कि वह समरकन्द को प्राप्त नहीं कर सकता। अतः इसके बाद उसने भारत की ओर ध्यान दिया। सिकन्दर लोदी के समय में वह भारत पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सका परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात अफगान अमीरों तथा इब्राहिम के मध्य वैमनस्य तथा फूट ने उसे भारत पर आक्रमण करने की प्रेरणा दी।

नवम्बर 1525 ई0 में बाबर अपने भारत विजय के अभियान पर काबुल से चला। दौलत खाँ लोदी और आलम खाँ लोदी, इब्राहिम से पराजित हो चुके थे। अतः पंजाब को जीतने में उसे कोई कठिनाई नहीं हुई। दौलत खाँ, उसका पुत्र दिलावर खाँ और आलम खाँ उससे मिल गये। 12 अप्रैल 1526 ई0 को बाबर पानीपत के मैदान में पहुँचा। इब्राहिम लोदी की शक्ति उस समय तक काफी दुर्बल हो गई थी। सम्पूर्ण पूर्वी भारत उसके हाथ से निकल चुका था। मेवाड़ के शासक राणा संग्राम सिंह ने उसकी शक्ति को काफी हानि पहुँचायी थी और सम्भवतः उसने भी इस अवसर पर बाबर को निमन्त्रण भेजा था तथा सम्पूर्ण पंजाब को इब्राहिम ने खो दिया था। इसके अतिरिक्त मालवा और गुजरात के शासक भी इब्राहिम की पराज्य के इच्छुक थे। यहाँ तक कि गुजरात का

भगोड़ा शहजादा बहादुर शाह अपने 3,000 घुड़सवारों के साथ एक दर्शक की भाँति पानीपत के युद्ध स्थल के निकट उपस्थित था। इन परिस्थितियों में 21 अप्रैल 1526 ई0 को बाबर और इब्राहिम लोदी में पानीपत का पहला युद्ध हुआ। लड़ाई में शामिल सेनाओं की तादात के बारे में विवाद है। लेकिन यह तय था कि इब्राहिम की सेना, बाबर की सेना के मुकाबले कई गुना बड़ी थी। इब्राहिम के खिलाफ बाबर ने पहली बार आग्नेय अस्त्रों का प्रयोग किया। उस्ताद अली और मुस्तफा ने मुस्तैदी से अपने मोर्चे संभाले और महत्वपूर्ण परिणाम हासिल किए। इसके अतिरिक्त बाबर ने तुलुगमा पद्धति का प्रयोग किया। इब्राहिम ने साहस और बहादुरी से युद्ध किया परन्तु बाबर के योग्य सेनापतित्व, श्रेष्ठ युद्ध–नीति और तोपखाने के कारण युद्ध में इब्राहिम की पराजय हुई और वह युद्ध स्थल में ही मारा गया।

यहाँ पर युद्ध का महत्व इस बात से नहीं आंका जाना चाहिए कि मैदान में कितने सैनिक मारे गए। वह आग और आदमी के बीच गैऱबराबरी का मुकाबला था। यह घटना तोपखाने और घुड़सवारी का प्रभावशाली तरीके के गठजोड़ करने में बाबर की योग्यता और कुशलता का परिचय देती है और इब्राहिम लोदी के संगठन–कौशल की कमजोरी को दर्शाती है। बाबर लिखता है कि इब्राहिम लोदी ''अनुभवहीन नौजवान आदमी था। वह अपनी हर चाल में लापरवाह था। वह बगैर हुक्म के ही चल पड़ता और बिना किसी योजना के ही ठहर जाता था आराम करने लगता और आगे नज़र डाले बगैर ही लड़ाई में उलझ पड़ता था।'' उसके साथ ही जुड़ी थी वित्तीय तंगी की इब्राहिम की समस्या जो जागीरदारी व्यवस्था से उपजी थी। साथ ही इब्राहिम की हार का प्रमुख कारण अफगानों की फूट और उनमें एकता का अभाव था जिसके लिए वह स्वयं जिम्मेदार था।

4.8 दिल्ली सल्तनत का अंत :

पानीपत की लड़ाई ने विघटनशील तुर्क अफ़गान उमरावों को अपने आघात से कुचल दिया और भारत की राजनीति में एक नए खून का प्रवेश कराया। उसने लोदी वंश का अंत कर दिया और उसकी जगह एक ऐसे वंश को स्थापित किया जिसने अपना विदेशी दृष्टिकोण पूरी तरह से त्यागकर हर तरह से अपना भारतीयकरण किया। उसने इस देश की सांस्कृतिक महानता में किसी अन्य शासक वंश से कहीं अधिक योगदान दिया। सन् 1192 में तराइन के युद्ध में जिस दिल्ली सल्तनत ने जनम लिया उसने सन् 1526 में पानीपत के मैदान में आखिरी सांस ली।

4.9 सारांश :

यद्यपि इब्राहिम लोदी में योग्यता तथा बुद्धि का पूर्ण अभाव नहीं था फिर भी उसे दुःखद विफलता भोगनी पड़ी। स्वयं अफगान होते हुए भी वह अफगान जाति के चरित्र और भावनाओं से अपरिचित था। मूर्खतावश उसने अपने पिता और पितामह की बुद्धिमत्तापूर्ण नीति त्याग दी और अपने अमीरों पर कठोर अनुशासन लागू किया जिसने उन्हें विद्रोही बना दिया। अफगानों की एकता को नष्ट करने में उसका स्वयं का उत्तरदायित्व है। जिसके परिणाम स्वरूप मुगल वंश के संस्थापक बाबर का भारत में आगमन हुआ। इस प्रकार स्वयं उसने सल्तनत की नींव को खोखला किया और अपने जीवन तथा सिंहासन से हाथ धोए।

4.10 अभ्यासार्थ प्रश्नः

1. इब्राहिम लोदी के अमीरों के साथ सम्बन्धों पर प्रकाश डालिए। क्या यह कहना सत्य है कि वह अपनी गलतियों के कारण उनके विरूद्ध असफल रहा ?
2. पानीपत के प्रथम युद्ध पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. इब्राहिम लोदी की दुर्बलताओं का वर्णन कीजिए।
4. एक शासक के रुप में इब्राहिम का मुल्यांकन कीजिए।
5. दिल्ली सल्तनत का अंत कैसे हुआ ?

बोध–प्रश्न :

निम्नलिखित कथनों को पढ़कर सही (√) एवं गलत (x) के चिह्न लगाओ–

(i) इब्राहिम की प्रमुख समस्या अफगान सरदार थे। ( )

(ii) इब्राहिम की सबसे बड़ी दुर्बलता उसका हठी स्वभाव था। ( )

(iii) पानीपत का प्रथम युद्ध 21 अप्रैल 1526 को हुआ। ( )

(iv) पानीपत के युद्ध के पश्चात भी दिल्ली सल्तनत कायम रही। ( )

4.11 बोध–प्रश्नों के उत्तर : (i) √ (ii) √ (iii) √ (iv) x

4.12 सहायक ग्रन्थः

1. Thomas, Edward; The chronicles of the Pathan kings of Delhi.
2. Dorn : History of the Afghans.
3. Elliot & Dowson : History of India, etc., Vol.-IV
4. Haig, Woolsely : Cambridge, History of India, Vol.-III
5. वर्मा, हरिश्चन्द्र : मध्यकालीन भारत, भाग–1.
6. श्रीवास्तव, आर्शीवादी लाल : भारत का इतिहास 1000–1707.
7. A.B. Pandey : The first Afghan Empire.

इकाई पंचम– सल्तनतकालीन भारत की साहित्यिक–सांस्कृतिक उपलब्धियाँ

इकाई की रूपरेखा :

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 भाषा एवं साहित्य का विकास

5.2.1 फारसी साहित्य

5.2.2 संस्कृत साहित्य

5.2.3 हिन्दी–उर्दू तथा अन्य प्रादेशिक भाषाएं

5.3 वास्तुकला का विकास

5.4 चित्रकला का विकास

5.5 संगीतकला का विकास

5.6 भक्ति और सूफी आंदोलन

5.7 सारांश

5.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.9 शब्दावली

5.10 बोध–प्रश्नों के उत्तर

5.11 सहायक ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे–

- सल्तनत कालीन भारत में फारसी और संस्कृत का विकास
- हिन्दी–उर्दू तथा अन्य भाषाओं के उद्भव और विकास के विविध आयाम
- सल्तनतकाल में कौन सी स्थापत्यकला शैली का विकास हुआ और उसकी क्या विशेषताऐं थीं
- सल्तनतकाल में चित्रकला का विकास
- सल्तनतकाल में संगीत के क्षेत्र में उपलब्धियाँ
- भक्ति आंदोलन और सूफीमत का उदय

5.1 प्रस्तावना :

सन् 1192 में तुर्क सत्ता की स्थापना के साथ ही भारत में एक नए युग का आरम्भ हुआ। तुर्कों के आगमन से भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के विविध क्षेत्रों में

परम्परागत भारतीय सांस्कृतिक तत्वों का विदेशी सांस्कृतिक तत्वों से मिलन हुआ जिसके परिणामस्वरूप नवीन सांस्कृतिक सृजन के अध्याय का आरम्भ हुआ। यह सांस्कृतिक सृजन केवल भाषा और साहित्य तक ही सीमित नहीं रहा। इसका प्रभाव समाज और संस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र पर पड़ा। तुर्कों ने फारसी को राजभाषा बनाया जिसके परिणामस्वरूप फारसी साहित्य की रचना हुई। ज्ञान के नए द्वार खुले जिसका प्रभाव विभिन्न भाषाओं के उद्‌भव और साहित्य की रचना में देखा जा सकता है। कला के विविध क्षेत्र प्रभावित होने लगे और नवीन कला शैलियों का विकास होने लगा। अतः इस काल में विभिन्न सांस्कृतिक आयाम स्थापित हुए।

5.2 भाषा एवं साहित्य का विकास :

भारत में मुस्लिम सत्ता स्थापित होने के साथ ही कई भाषाओं में साहित्य की रचना हुई। उर्दू और खड़ी बोली हिन्दी का उद्‌भव हुआ। अन्य स्थानीय भाषाओं का विकास हुआ। समृद्ध भारतीय साहित्य और समृद्धशाली बना क्योंकि आक्रमणकारी तुर्क अपने साथ अपनी भाषाऐं, अपने आचार–विचार, अपनी मान्यताऐं, अपने आदर्श और मूल्य, अपना ज्ञान और कलाऐं, धर्म और दर्शन भी लाये थे। जिनका सम्पर्क भारतीय समाज, संस्कृति, धर्म, दर्शन, ज्ञान और कलाओं से हुआ। इस काल में साहित्य के विकास का वर्गीकरण निम्नलिखित है–

5.2.1 फारसी साहित्य :

तुर्की सुल्तान फारसी साहित्य में रूचि रखते थे। महमूद गजनवी के समय में अलबरूनी भारत आया था। वह एक महान विद्धान था, जिसने संस्कृत का भी अध्ययन किया था। इल्तुतमिश के समय में नासिरी, अबू–बक्र–बिन मुहम्मद रूहानी, ताजुद्‌दीन दबीर और नुरूद्‌दीन मुहम्मद मुख्य विद्धान थे। नूरूद्‌दीन ने 'लुबाब–उल–अलवाव' को लिखा था। सुल्तान बलबन और अलाउद्‌दीन खिलजी के समय में मंगोलों के आक्रमण से भयभीत अनेक विदेशी मुसलमान विद्धान भारत भाग कर आये जिसके कारण दिल्ली, फारसी साहित्य का एक मुख्य केन्द्र बन गया। बलबन का पुत्र मुहम्मद विद्धानों का संरक्षक था और उसने अपने समय के महान् विद्धान अमीर खुसरो तथा मीर हसन देहलवी को संरक्षण प्रदान किया था। अमीर खुसरो ने अपनी कविताओं में हिन्दी शब्दों का प्रयोग आरम्भ किया। उनके प्रमुख ग्रंथ हैं– खजाइन–उल–फुतूह, नूह सिपिहर, आशिका, तुगलकनामा, तारीखे–अलाई, मिफता–उल–फुतूह, किरान–उस–सादेन आदि। मुहम्मद तुगलक के समय में बदरूद्‌दीन मुहम्मद, फारसी का श्रेष्ठ कवि था। इतिहासकार इसामी भी उसका समकालीन विद्धान था। फीरोज तुगलक ने स्वयं की आत्मकथा लिखी थी तथा इतिहासकार बरनी और अफीफ उसके संरक्षण में थे। लोदी

शासकों ने भी विद्वानों को संरक्षण दिया और सिकन्दर लोदी स्वयं कविताऐं लिखता था। रफीउद्दीन शिराजी, शेख अब्दुल्ला, शेख अज़ीज़उल्ला और शेख जमालुद्दीन उस समय के मुख्य विद्वान थे।

इतिहासकारों में अलबरूनी, 'ताजुल मासिर' का लेखक हसन निजामी, 'तबकाते नासिरी' का लेखक मिनहाजुद्दीन सिराज, 'तारीखे–फिरोजशाही' और 'फतवा–ए–जहाँदारी' का लेखक जियाउद्दीन बरनी, 'तारीख–ए–फिरोजशाही' का लेखक शम्स–ए–सिराज अफीफ, 'तारीख–ए–मुबारकशाही' का लेखक याहिया बिन अहमद सरहिन्दी और 'फुतूह–उस–सलातीन' का लेखक ख्वाजा अबूमलिक इसामी मुख्य माने गये हैं।

5.2.2 संस्कृत साहित्य :

संस्कृत साहित्य को हिन्दू शासकों से संरक्षण प्राप्त हुआ, मुख्यतः विजयनगर, वारंगल और गुजरात के शासकों से। इस युग के ग्रन्थों में मौलिकता का अभाव है। हमीरदेव, कुम्भकर्ण, प्रतापरूद्रदेव, बसन्तराज, कात्यमेव, विरूपाक्ष, नरसिंह, कृष्णदेवराज, भूपाल आदि ऐसे अनेक शासक हुए जिन्होंने संस्कृत साहित्य का पोषण किया। प्रतापरूद्र देव के दरबार के विद्वान अगस्त्य ने 'प्रतापरूद्रदेव यशोभूषण', 'कृष्ण चरित्र' आदि ग्रन्थों की रचना की। विद्याचक्रवर्तिन तृतीय ने वीर बल्लाल तृतीय के संरक्षण में 'नर्भासुर–विजय' की रचना की। वामन भटट् बान ने काव्य, नाटक, चरित्र, संदेश आदि विभिन्न प्रकार की रचनाऐं की। एक अन्य विद्वान विद्यापति ने 'दुर्गाभक्ति–तरंगिनी' की रचना की। विद्यारण्य ने 'शंकर विजय' लिखी, कृष्णदेवराय के दरबारी कवि दिवाकर ने अनेक ग्रन्थ लिखे। नयचंद ने 'हमीर–काव्य' लिखा। रामानुज ने ब्रहमसूत्रों पर टीकाएं लिखीं, पार्थसारथी ने कर्म–मीमांसा पर ग्रंथ लिखे तथा जयदेव ने 'गीत गोविन्द', जय सिंह सूरी ने 'हम्मीर–मद–मर्दन और गंगाधर ने 'गंगादास प्रताप विलास' लिखा। कल्हण द्वारा 'राजतरंगिणी' में कश्मीर का इतिहास चित्रित किया गया। हिन्दुओं के प्रसिद्ध कानूनी ग्रंथ 'मिताक्षरा' की रचना ज्ञानेश्वर ने की और ज्योतिष के महान विद्वान भास्कराचार्य भी इसी युग में हुए। सुल्तानों का संरक्षण न मिलने पर भी हिन्दू विद्वान अपने साहित्य की प्रगति में लगे रहे।

5.2.3 हिन्दी–उर्दू तथा अन्य प्रादेशिक भाषाऐं :

खड़ी बोली हिन्दी और उर्दू का यह उद्भव काल है। कालान्तर में यही भाषाऐं, प्रादेशिक भाषाओं के साथ मिलकर साहित्य के निर्माण का आधार बनीं। चन्दरबरदाई का 'पृथ्वीराज रासो', सारंगधर का 'हम्मीर–काव्य' जगनक का 'आल्हा–खण्ड' इसी श्रंखला की रचनाऐं हैं। अमीर खुसरो एक ऐसे विद्वान हैं जिन्हें हिन्दी और उर्दू दोनों का महान

कवि माना गया। मैथिल साहित्य के विकास में विद्यापति ठाकुर ने बड़ा सहयोग दिया जो हिन्दी, मैथिल और संस्कृत के बहुत बड़े विद्धान थे। इसके अतिरिक्त भक्ति और सूफी आंदोलन के संतों ने विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं के निर्माण में सहयोग दिया इन्होंने अपनी शिक्षाओं और उपदेशों के प्रचार का माध्यम प्रादेशिक और स्थानीय भाषाओं को बनाया। अवधी, राजस्थानी, सिन्धी, पंजाबी, गुजराती, मराठी, बंगाली, उडिया, तमिल, कन्नड़, तेलुगु, मलयालम, आदि प्रायः सभी भाषाओं का विकास इस काल में हुआ।

5.3 वास्तुकला अथवा स्थापत्यकला :

भारत में मुसलमानों के आगमन से इस युग में यहाँ एक ऐसी स्थापत्यकला का विकास हुआ जिसे 'भारतीय–इस्लामी' कला अथवा इस्लाम से प्रभावित भारतीय स्थापत्यकला के नाम से पुकारा जा सकता है। यह कला न पूर्णतया इस्लामी कला थी और न हिन्दू कला परन्तु मिलकर भारतीय कला ही कहला सकती थी। भारत और ईरान का सम्बन्ध बहुत प्राचीन था जिसे तुर्कों ने नए सिरे से इस कला में परिभाषित किया। कहा जा सकता है कि ''शक्ति और सौन्दर्य का जो सामंजस्य भारतीयों ने अपनी स्थापत्य कला में किया था वह अद्वितीय था। ईरानियों ने उसे ग्रहण किया था और तुर्क–अफगानों ने भारत में उसका पुनः प्रयोग किया।'' ईरानी कला के अतिरिक्त मध्य एशिया, मैसोपोटामिया, मिस्र, उत्तरी–अफ्रीका, दक्षिणी–पश्चिमी यूरोप, अफगानिस्तान आदि में स्थापत्यकला की विशिष्ट शैलियों का निर्माण हुआ था और मुस्लिम कला का व्यावहारिक स्वरूप इन सभी से मिल–जुलकर बना था। इस स्वरूप को लेकर तुर्क–अफगानों ने भारत में उस स्थापत्यकला का निर्माण किया जिसे भारतीय–इस्लामी कला का नाम दिया गया।

इस भारतीय–इस्लामी स्थापत्य कला शैली के विकास के अन्य कारण भी थे। तुर्क–अफगान शासक अपनी इमारतों में मध्य–एशिया अथवा ईरान की इमारतों का स्वरूप प्रदान करना चाहते थे। परन्तु भारत में आकर उन्होंने यहीं के कलाकारों से अपनी इमारतें बनवायीं अर्थात निर्माण की योजना विदेशी थी लेकिन श्रम और कारीगरी भारतीय थी परिणामस्वरूप मिश्रण और समन्वय स्वभाविक था। हिन्दू इमारतों को नष्ट करके उनके अवशेषों का प्रयोग अपनी इमारतों में किया। हिन्दुओं ने अपनी इमारतों को विभिन्न देवी–देवताओं की मूर्तियों से अलंकृत करने का प्रयत्न किया जबकि मुसलमानों ने रेखाओं को समान्तर, वर्ग, त्रिकोण विपक्ष आदि में काटकर अथवा कुरान की आयतों को लिखकर या चमकदार और विभिन्न रंगों के पत्थरों का प्रयोग करके अलंकृत करने का प्रयत्न किया।

मुसलमानों ने हिन्दू स्थापत्य कला को विस्तार, ठोसपन और चौड़ा आकार प्रदान किया। उन्होंने भारतीय स्थापत्य कला में मेहराबों और मीनारों को भी सम्मिलित किया जबकि मुस्लिम कला ने हिन्दू–मन्दिरों के कलशों को अपनी इमारतों में गुम्बदों की शक्ल में ग्रहण कर लिया। इसके अतिरिक्त मुसलमानों ने हिन्दुओं द्वारा इमारत को अलंकृत करने की कला को अपनी मेहराबों और मीनारों को सुन्दर बनाने के लिए ग्रहण किया। इमारतों पर सुलेख के रूप में कुरान की आयतों अथवा ऐतिहासिक घटनाओं का लिखना मुसलमानों ने, सभ्यवतया, इसीलिए अपनाया। मुसलमानों ने हिन्दू स्थापत्य कला से इमारतों को दृढ़, सुन्दर और आनुपातिक तरीके से बनाना भी ग्रहण किया। इस प्रकार, हिन्दू और इस्लामी स्थापत्य–कलाओं के विभिन्न प्रकार के मिश्रण द्धारा उस स्थापत्य कला का विकास हुआ जिसे हम भारतीय–इस्लामी (इण्डो–इस्लामी) स्थापत्यकला के नाम से पुकारते हैं।

5.4 चित्रकला का विकास :

भित्तिचित्र तथा सचित्र पांडुलिपियों दोनों ही रूपों में चित्रकला की परम्परा भारत में प्राचीन काल से ही रही है तथापि कला के इतिहासकारों द्वारा सर्वसम्मिति से यह माना जाता है कि दिल्ली के सुल्तानों के दरबारों में भारतीय मुस्लिम कला की कोई परम्परा नहीं रही। चिंतन–मनन से यह पता चलता है कि अधिकतर सुल्तान अपने धार्मिक दुष्टिकोण में रूढ़िवादी थे और ऐसा कोई ठोस साक्ष्य भी नहीं है जो इस तथ्य के विपरीत प्रमाण दे सके। अतः यह मान लिया गया कि सुल्तानों ने कलात्मक अभिव्यक्ति की इस विशेष शैली को कोई आश्रय नहीं दिया किंतु पिछले चालीस सालों के दौरान हुई रोचक खोजों तथा ज्ञात सामग्री के पुनर्मूल्यांकन को दृष्टि में रखते हुए इस मत में संशोधन करना होगा, क्योंकि यह बिल्कुल स्पष्ट है कि दिल्ली के सुल्तानों के लम्बे शासनकाल के दौरान दिल्ली में और साथ ही साथ प्रांतों में भी चित्रकला को प्रोत्साहन दिया गया।

भारत में चित्रकला को साम्राज्यों तथा धर्म–तन्त्र दोनों से ही आश्रय मिला। उत्तर मध्यकाल में संपूर्ण इस्लाम जगत में राजकीय कक्षों तथा भवनों में भित्तिचित्रों का बहुत प्रचलन था और दिल्ली सल्तनत भी निश्चित रूप से इसका अपवाद नहीं थी। इसी प्रकार सुल्तान लोग अरबी और फारसी की उन श्रेष्ठ साहित्यिक और ऐतिहासिक कृतियों की चित्रित पांडुलिपियों से भी अनभिज्ञ नहीं रहे होंगे जिन्हें उत्साही कुलीन वर्ग के लोग तथा पुस्तक प्रेमी तुर्किस्तान, ईराक तथा फारस से निरंतर आयात करते रहते थे। जिस कारण यहाँ के चित्रकारों को भी प्रोत्साहन मिला।

19वीं सदी के बाद के वर्षों में सर्वप्रथम, मुहम्मद अब्दुल्ला चुगताई ने यह विचार प्रस्तुत किया कि सल्तनत काल में चित्रकला का अस्तित्व रहा है। उन्होंने अपने विचारों का समर्थन भारतीय पर्शियन साहित्यिक ग्रंथों में चित्रकला के सम्बन्ध में दिए गए विभिन्न उल्लेखों के आधार पर किया। 1947 में हरमन गोइट्स ने 'द जनरल आफ द इण्डियन सोसाइटी आफ ओरियन्टल आर्ट' में अपना एक लेख छपवाकर यह विचार व्यक्त किया कि सल्तनत काल में चित्रकला का अस्तित्व था।

दिल्ली सल्तनत काल में भित्तिचित्रों का निर्माण हुआ था, यह अब विभिन्न विद्वानों द्वारा स्वीकार किया गया है यद्यपि प्रमाण के रूप में ऐसे चित्रों के अवशेष मुगलों के शासन से पहले बने हुए चंपानेर और सरहिंद में बने कुछ स्मारकों तथा सीरी और बेगमपुर के बीच स्थित मखदमूबली मस्जिद से ही प्राप्त हुए हैं। इस कारण, इस काल में भित्ति–चित्रकला जीवित थी इसके प्रमाण अधिकांश तथा पुस्तकों में दिए गए विवरणों पर ही आधारित हैं। समकालीन विद्वान ताजुद्दीन रज़ा ने लिखा कि 'सुल्तान इल्तुतमिश के शासन काल में भित्ति–चित्रों का प्रयोग दीवारों को सजाने के लिए खूब किया जाता था।' 14वीं सदी में इतिहासकार इसामी ने अपनी पुस्तक 'फूतूह–उस–सलातीन' में ताजुद्दीन रज़ा के विचार की पुष्टि की। अलाउद्दीन के समकालीन विद्वान अमीर खुसरों के विभिन्न ग्रन्थों में भित्ती–चित्रों, पांडुलिपि–चित्रों और कपड़ों पर बनाये गए चित्रों का उल्लेख किया गया है। खुसरो द्वारा लिखी गयी पुस्तक नूहसिपेहर में सुन्दर चित्रित वस्त्रों का वर्णन मिलता है। जियाउद्दीन बरनी द्वारा लिखी गयी पुस्तक, तारीख–ए–फीरोज़शाही में यह वर्णन मिलता है कि सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी ने सुल्तान कैकूबाद द्वारा आरम्भ किए महल के निर्माण को पूरा कराया और उसे भित्तिचित्रों से सजाया।

दिल्ली–सल्तनत काल में लघु–चित्र बनाने और पाण्डुलिपियों पर चित्र बनाने की भी प्रथा थी। अमीर खुसरो द्वारा रचित खम्सा की पाण्डुलिपि के कुछ पृष्ठ प्राप्त हुए हैं, जिन पर चित्र बने हुए हैं। मालवा, जौनपुर, बंगाल और गुजरात में भी ऐसे चित्र बनाये जाने की प्रथा थी, ऐसे प्रमाण मिले हैं। विभिन्न स्थानों पर चित्रकला के इन क्षेत्रों में विभिन्न शैलियां प्रचलित थीं और एक लम्बे समय तक सम्भवतः सम्पूर्ण सल्तनत युग में इस प्रकार की चित्रकला जीवित रही थी।

5.5 संगीतकला का विकास :

संगीत इस्लाम में वर्जित है। इस कारण दिल्ली सल्तनत के प्रारम्भिक सुल्तानों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। बाद में बलबन, जलालुद्दीन खिलजी, अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद तुगलक जैसे सुल्तानों ने इसे संरक्षण प्रदान किया। बलबन का

पुत्र बुगरा खान भी संगीतकला का प्रेमी था। उसने गायकों, नर्तकी और नाटककारों की एक संस्था का निर्माण किया था। अलाउद्दीन खिलजी ने दक्षिणी–भारत के तत्कालीन महान संगीतज्ञ गोपाल नायक को अपने दरबार में बुलाया था। अमीर खुसरो ने भारतीय और पर्शियन रागों का सुन्दर मिश्रण किया और इस प्रकार कुछ नवीन राग शैलियों जैसे इमान, ज़िल्फ, साजगरी आदि को जन्म दिया। खुसरो ने कव्वाली में भी एक नवीन शैली को जोड़ा। मुहम्मद तुगलक ने संगीत में विशेष रूचि ली। अपने शासन काल में उसने अनेक संगीत–गोष्ठियां आयोजित कीं, जिनमें हिन्दू और मुसलमान सभी संगीतज्ञ सम्मिलित थे। फीरोज तुगलक भी संगीत कला में रूचि रखता था। विभिन्न प्रांतीय शासकों ने भी संगीत कला को संरक्षण प्रदान किया। जौनपुर के प्राय : सभी शासकों ने संगीत कला को संरक्षण दिया। उनके संरक्षण में एक मुस्लिम विद्वान ने 1375 ई0 में संगीतकला के एक अच्छे ग्रन्थ गुलयान–उल–मुनयास की रचना की। वहाँ का शासक हुसैनशाह शर्की स्वयं एक अच्छा संगीतज्ञ था और उसने एक नवीन राग ख्याल को भारतीय संगीतकला में सम्मिलित किया। इसके अतिरिक्त उसके संरक्षण में कई संगीत–विद्वानों ने मिलकर संगीत–शिरोमणि नामक एक श्रेष्ठ संगीत–ग्रन्थ की रचना की। मालवा का शासक बाज बहादुर संगीतकला में बहुत रूचि लेता था जबकि उसकी पत्नी रूपमती इस कला की अच्छी ज्ञाता थी। कश्मीर का शासक जैन–उल–आबदीन स्वयं एक योग्य संगीतकार था। उसके संरक्षण में बुद्धिदत्त नामक एक विद्धान ने संगीतकला पर एक ग्रंथ की रचना की। बिहार में चिंतामणि एक महान संगीतज्ञ हुए जिन्हें ''बिहारी बुलबुल'' की उपाधि दी गई। तिरहुत में विद्यापति एक महान संगीतज्ञ हुए। उनका 'कजरी' नामक काव्य–संगीत बहुत लोकप्रिय हुआ। ग्वालियर का राजा मानसिंह कला–मर्मज्ञ था। उसके दरबार के संगीत–विद्धानों ने भारतीय–कला को ध्रुपद–राग प्रदान किया जो एक उत्साहवर्धक राग है। कई महान संगीतज्ञों जैसे भक्शू और बैजू बाबरा को भी उसका संरक्षण प्राप्त हुआ था। इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत के विभिन्न शासकों ने भी संगीतकला को संरक्षण प्रदान किया। भक्ति और सूफी मार्ग के अनेक संतों एवं साधकों ने संगीत कला की उन्नति में सहयोग प्रदान किया।

5.6 भक्ति और सूफी आंदोलन :

संतों तथा सूफियों के प्रयासों से भारत में जो भक्ति एवं सूफी आन्दोलन आरम्भ हुए उससे मध्यकालीन भारत के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में एक नवीन शक्ति एवं गतिशीलता का संचार हुआ। दोनों ही आन्दोलनों की उत्पत्ति अपने–अपने धर्म और समाजों में हुई थी लेकिन एक–दूसरे के सम्पर्क में आने से दोनों ने एक–दूसरे को प्रभावित किया। इस संपर्क ने भारतीय सामाजिक–सांस्कृतिक क्षेत्र में नए आयाम गढ़े।

रानाडे के अनुसार–भक्ति आन्दोलन के परिणामों में प्रमुख थे : भक्ति के प्रति आस्था का विकास, लोक भाषाओं में साहित्य रचना का आरम्भ, इस्लाम के साथ सहयोग के परिणामस्वरूप सहिष्णुता की भावना का विकास जिसके कारण जाति–व्यवस्था के बंधनों में शिथिलता आई और विचार तथा कर्म दोनों स्तरों पर समाज का उन्नयन हुआ। जहाँ तक सूफीवाद का सम्बन्ध है, गिब का मत है कि इसने उन तत्वों (सृजनात्मक, सामाजिक और बौद्धिक शक्तियों) को अपनी ओर आकृष्ट किया जो सामाजिक और सांस्कृतिक क्रांति के वाहक के रूप में उभरकर सामने आए। यहीं से समन्वय या सम्मिश्रण की संस्कृति का उदय हुआ और दोनों समाजों ने एक–दूसरे से तालमेल बिठाया एवं एक साझी संस्कृति और समझ विकसित की।

5.7 सारांश :

इस युग में इस्लाम के आगमन के साथ भारत में एक नई संस्कृति का प्रवेश हुआ। यह सत्य है कि जब कभी भी दो विभिन्न संस्कृतियां एक दूसरे के सम्पर्क में आईं हैं तो उन्होंने एक–दूसरे को अवश्य प्रभावित किया है। ऐसा ही सल्तनत काल में हुआ एक मिश्रित संस्कृति का विकास हो सका, नए साहित्य का सृजन हुआ। दिल्ली सल्तनत की स्थापना के पश्चात हिन्दू संतों एवं मुस्लिम सूफ़ियों तथा समाज–सुधारकों के परस्पर सम्पर्कों के द्वारा यह प्रवृत्ति साहित्य के क्षेत्र में भी दिखाई देती है। सल्तनत कालीन शासकों ने हिन्दू कलाकारों एवं शिल्पकारों को प्रश्रय प्रदान करने का तथा मिश्रित कला शैलियों के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। हांलाकि यह काल राजनीतिक उथल–पुथल का काल रहा था लेकिन फिर भी इस काल में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सृजन बदस्तूर चलता रहा।

5.8 अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. सलनत काल में फारसी साहित्य के विकास का वर्णन कीजिए।

2. सल्तनत काल में वास्तुकला के विकास का वर्णन कीजिए।

3. सल्तनत काल में संस्कृत तथा हिन्दी–उर्दू भाषा के विकास को रेखांकित कीजिए।

4. सल्तनत काल में विविध कलाओं के विकास का संक्षित वर्णन कीजिए।

बोध–प्रश्न :

निम्नलिखित कथनों को पढ़कर सही (√) एवं गलत (x) के चिह्न लगाओ–

(i) मुसलमानों में सती प्रथा विद्यमान थी। ( )

(ii) महमूद गजनवी के समय अकबरूनी भारत आय ( )

(iii) विद्यारण्य ने 'शंकर विजय' की रचना की। ( )

(iv) स्थापत्यकला इस्लाम के प्रभाव से अछूती रही। ( )

5.9 शब्दावली

- भित्तिचित्र : दीवारों पर बने हुए चित्र
- पांडुलिपियां : हस्त लिखित ग्रन्थ
- मेहराब : भवन निर्माण में अर्धचंद्राकार डिजाइन

5.10 बोध–प्रश्नों के उत्तर : (i) x (ii) √ (iii) √ (iv) x

5.11 सहायक ग्रन्थ

1. Srivastava, A.L. : Medieval Indian Culture.
2. Tara Chand : Influence of Islam on Indian Culture.
3. Mazumdar, R.C. (Ed.) : The Delhi Sultanate (Bhartiya Vidhya Bhawan : The History and culture of the Indian People, Vol. VI).
4. अहमद, लईक : मध्यकालीन भारतीय संस्कृति
5. Havell : Indian Architecture. / Pery Brown : Indian Architecture.
6. Haig, Woolseley : Cambridge History of India, Vol, III.
7. Yusuf Hussain : Glimpse of medieval Indian Culture.

UGHY- 02

भारत का इतिहास

(1206 ई. से 1556 ई.तक)

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

खण्ड-6

भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना

इकाई- 1

बाबर का आगमन के समय भारत की दशा
(तुजुक-ए-बाबरी-का वर्णन)

इकाई- 2

बाबर का आक्रमण एवं उसकी उपलब्धियाँ

इकाई- 3

हुमायूँ की समस्यासें, पराजस एवं पुर्नागमन

इकाई- 4

द्वितीस अफगान साम्राज्य, शेरशाह की उपलब्धियाँ
एवं मूल्यांकन

इकाई- 5

सूरवंश का पतन, मुगलों की पुर्नस्थापना

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

UGHY-02-भारत का इतिहास (1206 ई.से 1556 ई.तक)

परामर्श समिति

अध्यक्ष	प्रो0 सीमा सिंह माननीया, कुलपति, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
	प्रो0 पी0 पी0 दुबे , कुलसचिव, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठयक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो.सन्तोषा कुमार	आचार्य, इतिहास एवं प्रभारी निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो.मुकुन्द शरण त्रिपाठी	आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,गोरखपुर
प्रो.हिमांशु चतुर्वेदी	आचार्य इतिहास विभाग दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,गोरखपुर
प्रो.हेरम्ब चतुर्वेदी	आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज
डॉ. सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

इकाई लेखक	खण्ड	इकाई	सम्पादक
डॉ. बालकेश्वर, सह आचार्य, इतिहास काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही, उत्तर प्रदेश	प्रथम खण्ड	1,2,3,4,5	प्रो.हेरम्ब चतुर्वेदी आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
श्री विवेक कुमार सिंह, सहायक आचार्य, इतिहास लाल बहादुर शास्त्री, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दीनदयाल नगर, उत्तर प्रदेश	द्वितीय खण्ड तृतीय खण्ड	1,2,3,4,5 1,2,3,4,5	
डॉ. सत्यनारायण वर्मा, सह आचार्य, इतिहास पंडित दीनदयाल उपाध्याय राजकीय बालिका महाविद्यालय, सेवापुरी, वाराणसी, उत्तर प्रदेश	चतुर्थ खण्ड	1,2,3,4,5	
मु. तुफैल खाँ, सहायक आचार्य, इतिहास गाँधी फैज–ए–आम, पी. जी. कॉलेज, शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश	पंचम खण्ड षष्ट्म खण्ड	1,2,3,4,5 1,2,3,4,5	

2022 (मुद्रित)

(c) उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज– 211021

ISBN – 978-93-94487-57-4

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस साम्रगी के किसी भी अंश को उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

षष्ट्म खण्ड– भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना

इकाई प्रथम : बाबर का आगमन के समय भारत की दशा (तुजुक–ए–बाबरी का वर्णन)

इकाई की रूपरेखा –

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 राजनीतिक दशा

1.2.1 दिल्ली

1.2.2 पंजाब

1.2.3 मेवाड़ और मारवाड़

1.2.4 पूर्वी भारत

1.2.5 मध्य और पश्चिमी भारत

1.2.6 दक्षिण भारत

1.3 सामाजिक एवं सांस्कृतिक दशा

1.4 जलवायु और पर्यावरण

1.5 सारांश

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.7 शब्दावली

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.9 सहायक ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे–

- बाबर के आगमन के समय भारत की राजनीतिक स्थिति।
- सोलहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में भारत की सामाजिक एवं सांस्कृतिक दशा
- तुजुक–ए–बाबरी के अनुसार भारत की प्राकृतिक जलवायु और पर्यावरण

1.1 प्रस्तावना :

भारत में मुगल वंश का संस्थापक ज़हीरउद्दीन मुहम्मद बाबर सोलहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत आया। ''899 वें रमज़ान के महीने में 12 वर्ष की आयु में, मैं फरगना का शासक बना।'' इन शब्दों से बाबर की आत्मकथा आरम्भ होती है जो साहित्यिक

और ऐतिहासिक दोनों ही दृष्टियों से संसार की श्रेष्ठतम रचनाओं में स्थान रखती है। अपनी आत्मकथा 'तुजुक–ए–बाबरी' अथवा 'बाबरनामा' को बाबर ने अपनी मात्र भाषा तुर्की में लिखा था। पायन्दा खाँ और अब्दुर्लरहीम खानखाना ने फारसी में इसका अनुवाद किया। कई यूरोपीय भाषाओं, मुख्यतः फ्रेंच और अंग्रेजी में भी इसका अनुवाद हो चुका है। इनमें सबसे श्रेष्ठ अनुवाद अंग्रेजी में श्रीमती ए.एस. बेवरिज का माना गया है। बाबर ने भारत के विषय में इसमें विस्तार से लिखा था। बाबर की लेखन शैली बहुत स्पष्ट और प्रभावशाली थी।

1.2 राजनीतिक दशा :

सोलहवीं सदी का पूर्वार्द्ध जहाँ एक ओर दिल्ली में राजवशों की अस्थिरता और राजनीतिक उथल–पुथल का समय था, वहीं दूसरी ओर उन विचारों, संस्थाओं एवं कार्यप्रणालियों की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण समय भी था, जिन्हें आगे चलकर ''मुगल'' की संज्ञा दी गई। यह काल उन नई शक्तियों के उदय का साक्षी था जो आगे आने वाले समय को अनेक प्रकार से प्रभावित करने वाली थीं।

बाबर लिखता है कि जब उसने हिन्दुस्तान पर विजय प्राप्त की, उस समय सारा हिन्दुस्तान किसी एक शासक के अधीन नहीं था अपितु यहाँ अनेक छोटे–छोटे राजा राज्य करते थे और उनमें से प्रत्येक अपने को सम्राट समझता था। ममलूकों के समय से तो दिल्ली हिन्दुस्तान की राजधानी रही थी, किन्तु फिरोज तुगलक की मृत्यु के पश्चात सल्तनत में पतन और बिखराव आ गया, जिसके परिणाम स्वरूप सत्ता अनेक आंचलिक केन्द्रों में विभक्त हो गई जिनमें प्रमुख थे– जौनपुर, गुजरात, मालवा, दक्षिण के राज्य, बंगाल और विजयनगर। सत्ता के इन आंचलिक केन्द्रों में न केवल सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था थी अपितु इन्होंने बड़ी संख्या में उन स्थानीय प्रमुखों पर भी आधिपत्य सथापित कर लिया था जिन्हें पहले वश में नहीं किया जा सका था। ये सत्ताऐं कला, स्थापत्य, भाषा और साहित्य के नए–नए रूपों का केन्द्र बन गईं।

इस प्रकार बाबर के आगमन के समय किसी केन्द्रीकृत सत्ता का अभाव था। भारत एक प्रकार से राज्यों का समूह था। जिन पाँच मुस्लिम राज्यों का उल्लेख बाबर करता है, वे थे– दिल्ली, बंगाल, मालवा, गुजरात, बहमनी और खानदेश। हिन्दू राज्यों में मेवाड़, मारवाड़, विजयनगर प्रमुख थे। इसके अतिरिक्त बाबर ने उड़ीसा, सिंध और कश्मीर राज्यों का विवरण दिया है।

1.2.1 दिल्ली :

जिन पाँच मुस्लिम राज्यों का उल्लेख बाबर करता है, उनमें से एक दिल्ली पर लोदियों का अधिपत्य था। बहलोल लोदी एवं उसके पुत्र सिकंदर लोदी ने दिल्ली एवं

जौनपुर के राज्यों को जीतकर उन्हें एक शासन के अन्तर्गत ला दिया था। बहलोल लोदी के शासन काल में अफगानों के आगमन की तुलना फारसी इतिकासकारों ने 'चींटियों' एवं 'टिड्डियों' के दल से की है। इब्राहिम लोदी के सम्बन्ध अपने सांमतों से अच्छे नहीं रहे। आजम हुमायूँ सरवानी, मियाँ हुसैन फरमुली, मियाँ भूआ, दौलत खाँ, दिलावर खाँ जैसे वरिष्ठ अमीरों से उसका व्यवहार अच्छा नहीं था, जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने विद्रोह कर दिया और बाबर को दिल्ली पर आक्रमण करने का न्यौता दिया। बाबर ने इब्राहिम को एक अनुभवहीन, लापरवाह युवक की संज्ञा दी है, जिसकी रणनीति में कोई व्यवस्था या योजना नहीं थी और जो बिना सोचे–समझे, अदूरदर्शिता पूर्वक युद्ध मोल ले लेता था और लड़ जाता था।

1.2.2 पंजाब :

दिल्ली के पास पंजाब प्रांत वास्तव में दिल्ली सल्तनत का नाम मात्र का अंग था। वहाँ के गवर्नर दौलत खाँ लोदी के सम्बन्ध सुल्तान इब्राहिम लोदी के साथ अच्छे नहीं थे। दौलत खाँ लोदी एक तरह पंजाब का स्वतन्त्र शासक बन गया था। उसके पुत्र दिलाबर खाँ ने, जो दिल्ली से किसी तरह निकल भागा था, सूचना दी की सुल्तान के इरादे दौलत खाँ के लिए नेक नहीं हैं। इसीलिए दौलत खाँ ने दिलावर खाँ को बाबर के पास उसको निमंत्रित करने के लिए भेजा। वह पानीपत के प्रथम युद्ध में बाबर के साथ था।

1.2.3 मेवाड़ और मारवाड़ :–

सोलहवी सदी के आरम्भ में एक महत्वपूर्ण बात हुई कि राजपूताना में राजपूत राजनीतिक दृष्टि से पुनः शक्तिशाली हो गए। इस प्रदेश में दिल्ली के सुल्तान कभी दृढ़तापूर्वक अपने पैर नहीं जमा सके थे। सिसोदियों के नेतृत्व में मेवाड़ और राठौरों के नेतृत्व में मारवाड़ दो सशक्त राजपूत राज्यों के रूप में उभरे।

राणा संग्राम सिंह के नेतृत्व में मेवाड़ राजपूताना में सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य था। बाबर कहता है कि राणा सांगा ने उसे सहायता देने का वचन दिया था और उसे भारत आने का न्यौता दिया था। वह उस पर आरोप लगाता है कि पानीपत के युद्ध में उसकी सहायता न कर राणा ने वायदा खिलाफी की थी।

राणा मालदेव के नेतृत्व में दूसरा शक्तिशाली राज्य मारवाड़ था। मारवाड़ का राजनीतिक प्रशासनिक ढाचा भाई बंद की अवधारणा पर आधारित था। जब 1532 में मालदेव गद्दी पर बैठा तो उसका शासन केवल जोधपुर और सोजत तक ही सीमित रह गया। शीघ्र ही मालदेव ने भाई बंद अवधारणा को पलट दिया जिससे अन्य राजपूत असन्तुष्ट हो गए और इसके दूरगामी परिणाम हुए।

1.2.4 पूर्वी भारत :–

सन् 1491 ई0 में जौनपुर को सिकन्दर लोदी ने दिल्ली सल्तनत में मिला लिया था परन्तु इब्राहिम लोदी के दुर्व्यवहार के फलस्वरूप वहाँ के अफगान सरदारों ने नासिर खाँ लोहानी और आसफ फार्मूली के नेतृत्व में विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया था।

बिहार भी सल्तनत का अंग था परन्तु वहाँ दरिया खाँ लोहानी के नेतृत्व में विद्रोह की आग भड़क रही थी। बंगाल में दिल्ली के अधिपत्य को चुनौती देने की परम्परा रही थी। वहाँ अलाउद्दीन हुसैनशाह का शासन था। उसने एक स्वतंत्र हुसैनी राजवंश की स्थापना की थी। 1519 में हुसैनशाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र नुसरतशाह गद्दी पर बैठा जो बाबर का समकालीन था।

1.2.5 मध्य और पश्चिम भारत :

मालवा पर खिलजियों का स्वतन्त्र नियन्त्रण था। उस समय वहाँ सुल्तान महमूद द्वितीय शासन कर रहा था जो एक अत्यन्त अयोग्य शासक था। मालवा पर्याप्त उथल–पथल का केन्द्र था क्योंकि मेवाड के राजपूत राजा और गुजरात के शासक मालवा पर आक्रमण करते रहते थे।

गुजरात में मुहम्मदशाह द्वितीय का स्वतन्त्र शासन था। 1525 ई0 में उसकी मृत्यु के बाद बहादुरशाह वहाँ का शासक बना। गुजरात भारत के सर्वाधिक सम्पन्न प्रदेशों में से एक था।

1.2.6 दक्षिण भारत :

दक्षिण में बहमनी शासकों की शक्ति क्षीण पड़ गई थी। प्रधानमंत्री महमूद गवाँ ने बड़ी चतुराई से स्थानीय एवं विदेशी सामंतों के संघर्षों को नियन्त्रण में रखकर स्थिति को संभाले रखा था। किन्तु 1485 में महमूद गवाँ दरबारी षड्यंत्रों का शिकार हो गया और बहमनी राज्य अनेक छोटे–छोटे राज्यों में बिखर गया। इनमें प्रमुख थे, अहमदनगर, बीदर, बरार, बीजापुर और गोलकुंडा। खानदेश पर फारूखी राजवंश का अधिकार था। यह राज्य मालवा के दक्षिण में स्थित था और सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण था क्योंकि यह मालवा होकर दक्षिण जाने के मार्ग में पड़ता था। असीरगढ़ इस मार्ग में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण दुर्ग था। आदिल खान तृतीय और उसके पुत्र मीरान मुहम्मद प्रथम के शासनकाल में खानदेश ने गुजरात की अधीनता स्वीकार कर ली।

बाबर ने विजयनगर के राजा का विशेष उल्लेख किया है और उसे ''क्षेत्र एवं सेना की दृष्टि से काफिर नृपतियों में सर्वाधिक शक्तिशाली'' कहा है। इस विशेष उल्लेख का अधिकारी था कृष्णदेव राय (1509–1529 ई0)। उसके शासनकाल में राज्य का विस्तार कृष्णा एवं तुगभद्रा से लेकर दूर दक्षिण तक हुआ। डोमिंगो पेज ने, जो

कृष्णदेव राय के दरबार में आने वाला पुर्तगाली था, नगर और राजधानी का बड़ा सजीव वर्णन किया है। यह राज्य दक्षिण के पाँच राज्यों के साथ युद्ध में फंसा हुआ था जिसके फलरूवरूप तालीकोटा के युद्ध के पश्चात अंततः इस राज्य का अस्तित्व समाप्त हो गया।

1.3 सामाजिक एवं सांस्कृतिक दशा :

सांप्रदायिक सद्भावना की दिशा में बाबर के योगदान को भी नकारा नहीं जा सकता। पुत्र हुमायूँ को दी गई बाबर की सीख उसके विशाल दृष्टिकोण की परिचायक है। उसने कहा था, ''तुम कभी धार्मिक पूर्वाग्रह को अपने मन पर हावी मत होने देना और पूजा के सभी वर्गों की धार्मिक भावनाओं एवं रीति–रिवाजों को ध्यान में रखकर निष्पक्ष न्याय करना। विशेष रूप से तुम गोहत्या से दूर रहना..... तुम कभी किसी भी समुदाय के पूजास्थल को नष्ट मत करना। दमन की तलवार की अपेक्षा प्रेम और कर्त्तव्य की आस्था द्वारा इस्लाम का प्रचार कहीं अच्छी तरह किया जा सकता है।''

किसी भी चीज़ को देखने–समझने की बाबर में असाधारण शक्ति थी। उत्तर भारत की यात्राएं करते समय वह यहाँ की प्राकृतिक विशेषताएं, वनस्पति, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति को भी ध्यान से देखता भालता रहा था और इन सबका उसने वर्णन किया है। वह कहता है कि सामाजिक संसर्ग अर्थात एक–दूसरे के यहाँ जाने–आने का यहाँ चलन नहीं है, न लोगों में किसी प्रकार की प्रतिभा है और न शक्ति ही है और न वे एक दूसरे के साथ बरताव करने में दक्ष ही हैं। यहाँ की दस्तकारी में रूप–आकृति और नियम–समानता का सौष्ठव नहीं हैं। बाजारों में बढ़िया रोटी–रसोई नहीं मिलती। उच्च विद्यालय नहीं हैं, बत्तियां और मशाले नहीं हैं। मशालों के स्थान पर ये तेल के दीपकों का प्रयोग करते हैं जिनको नौकर अपने हाथों में लिए होते हैं। लोगों के रहने के मकान अच्छे नहीं हैं और न उनमें हवा का उचित प्रबन्ध है।

''किसान तथा अन्य निम्न श्रेणी के लोग नंगे घुमा–फिरा करते हैं। ये लोग इज्जत ढकने के लिए एक चीथड़ा बांध लेते है, यह टूँडी (नाभि) से दो बालिश्त नीचे लटका रहता है, और एक छोर टाँगों के बीच में से निकालकर पीछे इसी कपड़े में बाँध दिया जाता है। इस चीज को वे लोग लंगोटा कहते हैं। औरतें भी इसी तरह एक कपड़े से अपना शरीर ढकती हैं। उनका आधा वस्त्र तो उनकी कमर के आसपास बाँधा जाता है और आधा सिर को ढक लेता है।

''हिन्दुस्तान में दूसरी अच्छी बात यह है कि यहाँ हर प्रकार के असंख्य, अनगिनत काम करने वाले हैं। प्रत्येक काम को करने वालों की एक पृथक जाति विशिष्ट है और यह जाति उसी काम को बाप से बेटे तक, पीढ़ी–दर–पीढ़ी करती है।

मुल्ला शरीफ ने 'जफरनामा' में तैमुर बेग द्वारा बनवायी जाने वाली पत्थर की मस्जिद के बारे में लिखा है कि इसके निमार्ण में दो सौ पत्थर काटने वाले लगे थे। ये लोग अजरबेजान, फारस, हिन्दुस्तान आदि देशों से इकट्ठे किए गए थे। लेकिन आगरा की इमारतें बनवाते समय मेरे यहाँ तो रोजाना 680 कारीगर काम करते थे और पत्थर काटने वाले तो खास आगरा के ही थे। आगरा, बयाना, धौलपुर, ग्वालियर, सीकरी और कोल में बनने वाली मेरी इमारतों के लिए रोज़ाना 1491 कारीगर पत्थर काटने का काम करते थे। इसी तरह यहाँ हर काम के असंख्य दस्तकार और कारीगर मौजूद है।''

बाबर ने यहाँ की आर्थिक सम्पन्नता के बारे में लिखा ''हिन्दुस्तान की सबसे अच्छी बात है कि एक विस्तृत देश है और यहाँ सोने–चांदी की भरमार है। ''उसने यहाँ की समृद्धि का बड़ा सजीव वर्णन किया है। हिन्दुस्तान की दौलत का अनुमान वह यहाँ के आंकड़ों से लगाता है, ''हिंद के लोगों के पास आंकड़ों की श्रेष्ठ व्यवस्था हैः सौ हजार को वे एक लाख कहते है; सौ लाख को एक करोड़, सौ करोड़ को एक अरब, सौ अरब को एक खरब, सौ खरब को एक नील, सौ नील को एक पद्म, सौ पद्म को एक शंख। इन ऊँचे आंकड़ों की व्यवस्था हिन्दुस्तान की अकूत दौलत का प्रमाण है।''

इस प्रकार बाबर भारत के रहन–सहन, खान–पान, रीति–रिवाज, वेश–भूषा, आर्थिक सम्पन्नता–विपन्नता, जाति व्यवस्था आदि का विस्तृत वर्णन करता है। हांलाकि यहाँ के समाज से अनभिज्ञ होने के कारण और समय के अभाव के कारण कहीं–कहीं चीजों को समझने में उससे चूक भी हुई है।

1.4 जलवायु और पर्यावरण :

बाबर ने भारत की जलवायु और प्रकृति का विवरण भी दिया है। बाबर ने लिखा है ''भारत प्रथम, द्वितीय और तृतीय जलवायु के बीच में है। इसका कोई भाग चौथे भाग में नहीं है। वह लिखता है– ''सिंध नदी को पार करते ही देश, पेड़, पत्थर घूमने वाली जातियों और व्यक्तियों के रिवाज़ और तौर–तरीके सभी हिन्दुस्तानी हैं।'' भारत के प्रथम सम्पर्क का प्रभाव उस पर अच्छा नहीं हुआ था। उसने लिखा है– ''यहाँ व्यक्ति न सुन्दर हैं न सुसंस्कृत। यहाँ न अच्छे घोड़े हैं न अच्छे कुत्ते, न अच्छे अंगूर, खरबूजे और अन्य फल।'' गरम पानी के हम्माम नहीं हैं। बड़ी–बड़ी नदियों और पहाड़ी झरनों को छोड़कर यहाँ पानी का अभाव है। बाबर यहाँ की वर्षा से बड़ा प्रसन्न होता था। उसने लिखा– ''यहाँ कभी–कभी एक दिन में 10, 15 या 20 बार वर्षा हो जाती है। एकाएक यहाँ मूसला धार वर्षा हो जाती है। और वे नदियाँ जिनमें बिलकुल पानी नहीं होता, पानी से भरकर, बहने लगती है। वर्षा के समय यहाँ की हवा बहुत मजेदार हो जाती है। इसका सबसे बड़ा दोष सीलन और जंग लग जाना है। वर्षा के मौसम में हम अपने देश की

कमानों का प्रयोग नहीं कर सकते। कवच, पुस्तक, वस्त्र, वर्तन आदि सभी पर इसका प्रभाव हो जाता है और सभी बेकार हो जाते हैं। वर्षा के अतिरिक्त गर्मी और जाड़ों में भी यहाँ अच्छी हवा चलती है। वर्षा से पहले यहाँ हवा पाँच या छः बार तेज़ी से चलती हैं जिसे ये लोग आंधी पुकारते हैं। वह लिखता है यहाँ का मौसम गरम रहता है लेकिन गरमी असहनीय नहीं पड़ती। उसने यहाँ के जानवर, पक्षी, परिन्दे, फल–फूल और वृक्षों का वर्णन भी किया है।

1.5 सारांश :

तुजूक–ए–बाबरी के विवरण से पता चलता है कि भारत में किसी एक केन्द्रीकृत सत्ता का अभाव था। इस समय विकेन्द्रीकरण की प्रवृति अपने चरम पर थी। उत्तर से लेकर दक्षिण तक और पूरब से लेकर पश्चिम तक भारत विभिन्न राजनीतिक इकाईयों में बटा हुआ था। ये राज्य सदैव युद्धरत रहते थे और एक दूसरे को नीचा दिखाने में लगे रहते थे। जिसके परिणामस्वरूप बाबर को भारत में पैर जमाने का अवसर मिला।

बाबर के द्वारा लिखित विवरण से स्पष्ट होता है कि भारत में इस समय सामाजिक बिखराव के विविध तत्व मौजूद थे। भारत में आर्थिक सम्पन्नता और विपन्नता दोनों थी जबकि सांस्कृतिक विविधता एक प्रमाणिक सत्य है जिसकी चर्चा अनेक स्थानों पर तुजूक–ए–बाबरी में मिलती हैं।

1.6 अभ्यसार्थ प्रश्नः

1. बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक स्थिति का विवेचन कीजिए।
2. सोलहवी सदी के पूर्वार्द्ध में उत्तरी भारत की सामाजिक एवं सांस्कृतिक दशा का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
3. बाबरनामा के अनुसार भारत की जलवायु और पर्यावरण पर एक लेख लिखिए।
4. बाबर के आगमन के समय भारत में कौन–कौन से प्रमुख राज्य थे ? उल्लेख कीजिए।
5. आत्म कथा के आधार पर बाबर की विद्वता पर प्रकाश डालिए।

बोध–प्रश्न :

निम्नलिखित कथनों को पढ़कर सही (√) एवं गलत (x) के चिह्न लगाओ–

(i) तुजुक ए बाबरी तुर्की भाषा में लिखी गई है। ( )

(ii) सोलहवीं सदी का पूर्वार्द्ध राजनीतिक स्थिरता का था। ( )

(iii) बाबर ने अपनी आत्मकथा में भारत की जलवायु के विषय में लिखा है।( )

(iv) बाबर ने लिखा कि यहाँ दस्तकार और कारीगर नहीं हैं। ( )

1.7 शब्दावली:

केन्द्रीकरण : एकीकृत व्यवस्था

विकेन्द्रीकरण : व्यवस्था में विखराव की प्रवृत्ति

आंचलिक : स्थानीय

1.8 बोध–प्रश्नों के उत्तर : (i) √ (ii) x (iii) √ (iv) x

1.9 सहायक ग्रन्थ :

1. श्रीवास्तव, आशीर्वादी लाल : भारत का इतिहास (1000–1707)
2. बाबरनामा, हिन्दी अनुवाद, मुन्शी देवी, प्रसाद कायस्थ
3. Memories of Babur (Translated into English by Mrs. Beveridge)
4. Abul Fazl : Akbarnama, Vol. I (Translated into English by H. Beveridge)
5. Lanepoole, S : Babur (Rulers of Indian Series)
6. Edwards, S.M. : Babur : Diarist and Despot (1926)
7. Erskine, W. : History of India under Babur and Humayun (1854)
8. Dughlat, Mirza Haidar : Tarikh-i- Rashidi (Translated into English by E.D. Ross and N. Elias)

इकाई द्वितीय : बाबर का आक्रमण एवं उसकी उपलब्धियां

इकाई की रूपरेखा –

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 प्रारम्भिक जीवन

2.3 भारत पर आक्रमण

2.4 पानीपत का प्रथम युद्ध

2.4.1 बाबर की सफलता के कारण

2.4.2 युद्ध के परिणाम

2.5 खानवा का युद्ध

2.5.1 युद्ध के परिणाम

2.6 चंदेरी की विजय

2.7 घाघरा का युद्ध

2.8 साम्राज्य का विस्तार

2.9 बाबर की मृत्यु

2.10 मूल्यांकन और इतिहास में स्थान

2.11 सारांश

2.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.13 शब्दावली

2.14 बोध–प्रश्नों के उत्तर

2.15 सहायक ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे–

- बाबर का प्रारम्भिक जीवन संघर्ष
- भारत पर उसके विभिन्न आक्रमण और भारत विजय
- बाबर द्वारा मुगल साम्राज्य स्थापित करने के लिए लड़े गए युद्ध
- भारत में बाबर की विजयें और उपलब्धियां
- बाबर के साम्राज्य का विस्तार
- बाबर का इतिहास में स्थान और उसके चरित्र का मूल्यांकन

2.1 प्रस्तावना :

इब्राहिम लोदी ने बहलोल लोदी के आदर्शों को पूरी तरह पलट दिया जिससे अफगान राज्य का बिखराव आरम्भ हो गया। अफगान सरकार विभिन्न जागीरों और प्रदेशों के ढीले–ढाले संघ से ज़्यादा कुछ नहीं थी। इसलिए वह उसका केन्द्रीकरण करने में असफल रही। दौलत खाँ लोदी पंजाब का सूबेदार था उसे दरबार में बुलाया गया था लेकिन तबियत ठीक न होने का कारण उसने अपने पुत्र दिलावर खाँ को भेज दिया था। दिलाबर खाँ से बुरा व्यवहार किया गया। उसे जेलखाने में घुमाया गया और चेतावनी दी गई कि सुल्तान का हुक्म न मानने वालों पर क्या गुजर सकती है। इसी दौलत खाँ लोदी ने इब्राहिम लोदी के खिलाफ बाबर को आमंत्रित किया था। कहा जाता है बाबर को दूसरा निमंत्रण राणा सांगा की तरफ से मिला जो उत्तर भारत का शासक बनने का स्वप्न संजोए हुए था।

2.2 प्रारम्भिक जीवन :

जहीरउद्दीन मुहम्मद बाबर का जन्म 14, फरवरी 1483 को उमर शेख मिर्ज़ा और कुतलुक निगार के पुत्र के रूप में हुआ था। मुसीबत के दिनों को अगर महानता की सच्ची पाठशाला माना जाए तो बाबर ने भी अपनी जिंदगी के अच्छे–बुरे अवसरों से भरपूर शिक्षा ग्रहण की थीं जब बाबर बारह वर्ष का था तो उसके पिता का देहांत हो गया और अब फरगना का राज्य चलाने की जिम्मेदारी उस पर आ गयी। बाबर की नजर हमेशा अपने पूर्वजों की भूमि समरकंद पर लगी रही जहाँ उसका चाचा अहमद मिर्जा राज कर रहा था। किंतु समरकंद पर कब्ज़ा करने के बारे में बाबर तभी सोच सका जब अहमद मिर्जा की मृत्यू हो गई। उसने सन् 1496 ई0 और 1512 ई0 के बीच समरकंद पर बार–बार हमले किए और इस कसरत में समरकंद हाथ आने की बात तो दूर रही, फरगना भी उसके हाथ से निकल गया। बाबर खानाबदोश हो गया था। इन उतार चढ़ाव से गुजरते हुए मध्य एशिया में नाकाम रहने के बाद उसका ध्यान भारत की ओर आकर्षित हुआ।

2.3 भारत पर आक्रमण :

बाबर ने भारत पर कितने हमले किए, इस विषय में मतभेद है। पानीपत के बाद सन् 1526 में लिखते हुए उसने कहा है कि काबुल पर कब्जा करने (1505 ई0) के बाद से ही उसकी आकांक्षा भारत पर हमला करने की रही लेकिन उसे पहला मौका सन् 1519 में ही मिल पाया। अबुल फज़ल पाँच हमलों की बात कहता है। जनवरी 1505 ई0 में बाबर ने कोहात और मुल्तान में तारबिला पर कब्जा किया और लौट गया। इस अभियान में इसने सिंधु नदी पार नहीं की। सन् 1507 में वह मंद्रावर तक बढ़ आया।

जनवरी 1519 ई0 में उसने बाजौर पर कब्जा किया और वहाँ के मुखियाओं में से एक की पुत्री से विवाह करके यूसुफ भाइयों से संधि कर ली। जनवरी 1520 में बाबर ने फिर सियालकोट और सैयदपुर पर हमला किया लेकिन उसे वापस लौटना पड़ा।

बाबर सन् 1524 में पंजाब के उमरावों के बुलावे पर फिर भारत वापस आया। ये अफगान अमीर इब्राहिम के शासन से तृप्त थे तथा वे आलम खाँ लोदी का पक्ष लेने लगे थे जो इब्राहिम लोदी का चाचा था। आलम खाँ लोदी ने सम्भवतः बाबर से मुलाकात भी की थी। इसके अतिरिक्त दौलत खाँ के पुत्र दिलावर खाँ को इस निमंत्रण के साथ बाबर के पास भेजा गया कि वह भारत पर आक्रमण करे। बाबर ने भांप लिया कि अफगानों में एकता नहीं है। यही वह समय था जब बाबर को चित्तौड़ के शासक राणा सांगा से भी आमंत्रण मिला। हालांकि इस आमंत्रण का उल्लेख केवल बाबर ने ही किया है।

2.4 पानीपत का प्रथम युद्ध (21 अप्रैल, 1526 ई0) :

नवम्बर, 1525 में बाबर भारत को जीतने के उद्देश्य से काबुल से चला। दौलत खाँ को शीघ्र ही आत्मसमर्पण करना पड़ा। आलम खाँ भी शीघ्र ही बाबर की शरण में चला गया। इस प्रकार पंजाब को जीतने में उसे कोई कठिनाई नहीं हुई। अब बाबर ने दिल्ली की ओर कदम बढ़ाए। सुल्तान इब्राहिम लोदी उसका मुकाबला करने के लिए पंजाब की ओर बढ़ा। दोनों की सेनाऐं पानीपत के मैदान में एक–दूसरे के सामने मैदान में आ गयीं। पानीपत वर्तमान में दिल्ली के उत्तर में हरियाणा राज्य में स्थित है। बाबर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि उसने केवल 12000 सैनिकों की सहायता से इब्राहिम लोदी को परास्त किया। संभवतः यह संख्या तब रही होगी जब बाबर काबुल से चला था। आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव का कहना है कि पंजाब को जीतने के बाद बाबर की सेना की संख्या में वृद्धि हो गया थी और युद्ध के अवसर पर उसकी सेना में सैनिकों की संख्या 25,000 के लगभग होगी। इसी प्रकार इब्राहिम लोदी की सेना में 1000 हाथी और 1,00,000 सैनिक बताए जाते हैं, परन्तु संभवतः उसके वास्तविक सैनिकों की संख्या लगभग 40,000 होगी। दोनों पक्षों की वास्तविक संख्या कुछ भी हो परन्तु इसमें संदेह नहीं कि इब्राहिम लोदी की सेना बाबर की सेना से कहीं बड़ी थी। एक सप्ताह तक दोनों पक्षों की सेनाऐं एक–दूसरे के सामने पड़ी रहीं। वास्तविक युद्ध का आरम्भ 21 अप्रैल, 1526 को प्रातःकाल हुआ और दोपहर तक उसका निर्णय हो गया। युद्ध में बाबर की विजय हुई, इब्राहिम लोदी मारा गया और अफगान सेना नष्ट हो गयी।

2.4.1 बाबर की सफलता के कारण :

बाबर का तोपखाना उसकी युद्धनीति–मुख्यतः 'तुलगमा युद्ध पद्धति' का प्रयोग और उसके सेनापति की योग्यता, तोपों को सजाने में उस्मानी विधि (रूमी विधि) उसकी विजय के मुख्य कारण थे। बैलगाडियों के बीच में व्यवस्थित जगह छोड़कर उसमें तोपों को रखकर चलाने की विधि को 'उस्मानी विधि' कहा जाता था। बाबर ने तुलगमा युद्ध पद्धति उजबेकों से ग्रहण की थी। बाबर के पास अच्छा तोपखाना और बन्दूकें थीं। इब्राहिम लोदी के पास इनका अभाव था और उसका युद्ध करने का तरीका पुराना था। अफगान सेना के हाथी उसके लिए ही हानिकारक सिद्ध हुए, क्योंकि तोपों और गोला–बारूद के सामने युद्ध करने में वे प्रशिक्षित नहीं थे। बाबर के सैनिक इब्राहिम के सैनिकों की तुलना में पूर्ण अनुशासित और प्रशिक्षित थे। इब्राहिम एक कुशल सेनापति न था। बाबर ने उसके बारे में लिखा था : ''वह एक अनुभवहीन जवान आदमी था जो अपनी गतिविधियों में लापरवाह था, जो बिना किसी व्यवस्था के आगे बढ़ता था, जो बिना दूरदर्शिता के लड़ जाता था।'' बाबर, इब्राहिम की तुलना अधिक योग्य और अनुभवी सेनापति था।

2.4.2 युद्ध के परिणाम :

पानीपत का युद्ध बाबर की भारत विजय का प्रथम चरण था। उसने भारत के भाग्य का तो नहीं लेकिन लोदी–वंश के भाग्य का निर्णय अवश्य कर दिया। अफगानों की शक्ति समाप्त नहीं हुई लेकिन दुर्बल अवश्य हो गई। अफगानों की एकता का आधार नष्ट हो गया। बाबर के लिए यह युद्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण था। युद्ध के पश्चात बाबर ने दिल्ली तथा आगरा पर अधिकार किया। बाबर को अपनी स्थिति दृढ़ करने के लिए अभी और युद्ध करने पड़े परन्तु भारत में मुगल–वंश की नींव उसने इस युद्ध की विजय से डाल दी।

2.5 खानवा का युद्ध (16 मार्च 1527 ई0)

राजपूतों के विरूद्ध खानवा के युद्ध का मुख्य कारण बाबर का भारत में रहने का निश्चय था। राणा संग्राम सिंह मेवाड़ का शासक था। उसका विचार था कि विदेशी आक्रमणकारियों की भांति बाबर भी देश लूटकर चला जायेगा। परन्तु जब बाबर ने भारत में रहने का निश्चय किया तब उसने एक विदेशी की तुलना में स्थानीय अफगानों को अधिक उपयुक्त समझा। इसी कारण उसने हसन खाँ मेवाती से बाबर को बाहर निकालने के लिए सहायता मांगी, महमूद लोदी को दिल्ली का बादशाह स्वीकार किया और आलम खाँ लोदी को अपने यहाँ शरण दी। ऐसी स्थिति में बाबर से राजपूतों का युद्ध आवश्यक हो गया। बाबर ने राणा सांगा पर आरोप लगाया कि उसने इब्राहिम के विरूद्ध उसकी सहायता नहीं की और राणा ने बाबर पर दोषारोपण किया कि बाबर ने

बयाना, धौलपुर और कालपी पर अवैध अधिकार किया है। दोनों ओर से सेनाऐं बढ़ने लगीं। इस युद्ध में बाबर का मुकाबला राणा सांगा से था जिसके बारे में विख्यात था कि उसने अपने जीवन में सौ युद्ध लड़े थे और उसके जिस्म पर अस्सी घावों के निशान थे। निसंदेह, राणा सांगा भी बाबर की भाँति अनुभवी सेनापति था। ये सभी बातें मुगलों का नैतिक बल कम कर रहीं थीं। ऐसी स्थिति में बाबर ने अपने सेनापति, नेता और मानव–बुद्धि का पारखी होने की सहज बुद्धि का प्रयोग किया। अपने सैनिकों का मनोबल बढ़ाने के लिए नाटकीय ढंग से शराब न पीने की शपथ ली, शराब फिकवा दी, बर्तन तुड़वा दिये, मुसलमानों को 'तमगा' अथवा व्यापार कर से मुक्त कर दिया। 11 फरवरी, 1527 को 'जिहाद' घोषित कर दिया।

16 मार्च, 1527 को फतेहपुर सीकरी से दस मील दूर खानवा नामक स्थान पर दोनों सेनाओं का मुकाबला हुआ। बाबर की सेना में 40,000 जबकि राणा सांगा की सेना में लगभग 80,000 सैनिक थे। युद्ध लगभग बीस घण्टे चला। राणा सांगा युद्ध में घायल हो गया जिससे उसे सुरक्षित स्थान पर ले जाना पड़ा। राजपूतों ने मुगल तोपखाने और घुड़सवारों के आक्रमण का साहस और शौर्य से मुकाबला किया परन्तु आखिरकार राजपूत सेना बिखर गई और बाबर को विजय प्राप्त हुई।

2.5.1 युद्ध के परिणाम :

श्रेष्ठ सेनापतित्व, श्रेष्ठ युद्धनीति, श्रेष्ठ सैन्य संचालन के अनुकूल साहस और तोपखाने के कारण बाबर की जीत हुई। सैनिक दृष्टि से इस युद्ध ने मुगल हथियारों और युद्ध के तरीकों की श्रेष्ठता सिद्ध कर दी। राजपूतों की शक्ति दुर्बल हो गई। राजपूतों की शक्ति दुर्बल हो जाने से अफगानों की मुगलों से संघर्ष करने की शक्ति भी दुर्बल हो गई। हसन खाँ मेवाती मारा गया और आलम खाँ तथा महमूद खाँ भाग गए। इस युद्ध ने मुगल वंश को भारत में स्थापित कर दिया। बाबर की शक्ति को केन्द्र काबुल से हटकर हिन्दस्तान हो गया। बाबर का धुमक्कड़ और अस्थिर जीवन अब समाप्त हो गया।

2.6 चेन्दरी की विजय (29, जनवरी, 1528 ई0)

खानवा के युद्ध के पश्चात बाबर की एक मुख्य विजय चन्देरी की थी। चन्देरी व्यापार और राजनीति दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण था। चन्देरी पहले मालवा के अधीन था परन्तु बाद में वहाँ सूबेदार मेदनीराय ने राणा सांगा की अधीनता स्वीकार कर ली थी और खानवा के युद्ध में बाबर के खिलाफ भाग लिया था। बाबर ने इस शक्तिशाली राजपूत सरदार को स्वतन्त्र छोड़ना उपयुक्त नहीं समझा। 29 जनवरी, 1528 को प्रायः एक घण्टे के कठोर आक्रमण के पश्चात किले पर अधिकार कर लिया गया। मेदनीराय

युद्ध में मारा गया और हज़ारों की संख्या में राजपूत कत्ल कर दिए गए। राजपूत स्त्रियों ने 'जौहर' कर लिया। इस युद्ध के अवसर पर भी बाबर ने ज़िहाद घोषित किया था।

2.7 घाघरा का युद्ध (6 मई, 1529 ई0)

चन्देरी को जीतने के पश्चात बाबर की इच्छा रायसीन, भिलसा, और सारंगपुर को भी जीतने की थी जिससे उसे मालवा में प्रवेश मिल जाता, परन्तु यह सम्भव न हो सका। इससे पूर्व ही अफगान पूरब में एकत्र हो गए और कन्नौज तक बढ़ आए। अफगान सरदारों ने महमूद लोदी को बुला लिया था। बिहार उनके अधिकार में था। सम्भवतः बंगाल का अफगान शासक नुसरतशाह उनकी सहायता कर रहा था। बाबर ने अफगानों की शक्ति को समाप्त करने के लिए पूरब की ओर बढ़ना आरम्भ किया। अन्त में 6 मई, 1529 को घाघरा नदी के तट पर अफगानों से युद्ध हुआ। बाबर को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। अफगान सरदार उसके संरक्षण में आ गए। महमूद लोधी बंगाल भाग गया। बिहार का कुछ भाग मोहम्मद खाँ लोहानी को और अधिकांश भाग जलालुद्दीन को दे दिया गया। केवल कुछ भाग ही बाबर ने अपने अधीन रखा। शेर खाँ को भी माफ कर दिया गया। जलालुद्दीन ने उसे अपना मंत्री बनाना स्वीकार कर लिया। बंगाल के शासक नुसरतशाह ने बाबर से सन्धि कर ली जिसके द्वारा दोनों ने एक–दूसरे की संप्रभुता और सीमाओं को स्वीकार कर लिया। नुसरतशाह ने यह भी वायदा किया कि वह बाबर के शत्रुओं को अपने यहाँ शरण नहीं देगा।

2.8 साम्राज्य का विस्तार :

तीन बड़े युद्धों को जीतकर बाबर ने भारत में सिंधु नदी से लेकर बिहार तक और हिमालय से ग्वालियर और चन्देरी तक अपना राज्य स्थापित कर लिया था। उत्तरी भारत में मुगल सत्ता को चुनौती देने वाली कोई शक्ति नहीं रह गई थी। इस प्रकार मुगल राज्य भारत में स्थापित हो चुका था।

भारत में आकर भी बाबर ने मध्य एशिया का ध्यान नहीं छोड़ा था। उसने अपने वापस जाने वाले सैनिकों और सरदारों के साथ अपने बड़े पुत्र हुमायूँ को बदख्शां भेजा था। हुमायुँ को हिसार, हिरात और समरकन्द जीतने के आदेश दिए गए थे। लेकिन हुमायूँ को वहाँ कोई विशेष सफलता नहीं मिली।

2.9 बाबर की मृत्यु :

बाबर का अन्त समय निकट आ गया था। बाबर बीमार हो गया। आर.पी. त्रिपाठी ने बाबर की बीमारी और मृत्यु का मुख्य कारण उसके व्यस्त जीवन, भारत की गर्म जलवायु, इब्राहिम लोदी की माँ के द्वारा उसे दिया गया जहर जिसे वह बर्दाश्त कर गया था तथा शराब और अन्य नशीली चाज़ों का अत्यधिक मात्रा में सेवन बताया है। 26

दिसम्बर, 1530 को बाबर की मृत्यु हो गयी। अपने मरने से पहले उसने हुमायूँ को उत्तराधिकारी घोषित कर दिया उसके शव को पहले आगरा के आराम बाग में दफनाया गया, परन्तु बाद में उसे काबुल में उसी के द्वारा चुने गए स्थान पर दफना दिया गया।

2.10 मूल्यांकन और इतिहास में स्थान :

इतिहासकार स्मिथ ने लिखा कि ''बाबर अपने युग का एशिया का सबसे शानदार बादशाह था और वह किसी भी युग के और किसी भी देश के शासकों के बीच में एक सम्मानित स्थान प्राप्त करने के योग्य था। हैवेल ने उसे ''इस्लाम के इतिहास का सबसे आकर्षक व्यक्ति कहा है।'' बाबर का चरित्र और व्यक्तित्व निसंदेह प्रशंसा के योग्य है। उसका प्रारम्भिक जीवन और उसके संघर्षों की कहानी भी बेहद रोचक है। वह केवल महान विजेता ही नहीं अपितु एक महान विद्वान और कवि भी था। बाबर उन व्यक्तियों में से एक था जो शरीर और मन दोनों से इतने क्रियाशील होते हैं कि उन्हें सारे कार्य करने के लिए समय मिल जाता है। एक सैनिक के रूप में वह युद्ध में निर्भिक था। एक सेनापति के रूप में निपुण मोर्चाबन्दी करने वाला था। एशिया में वह पहला सेनापति था जिसने तोपखाने के महत्व को समझा।

बाबर ने अफगानों और राजपूतों की शक्ति को नष्ट करके एक मजबूत साम्राज्य की नींव डालने के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया। बाबर ने तीन महत्वपूर्ण युद्धों को जीतकर भारत में मुगल वंश के साम्राज्य की नींव डाल दी। उसने खलीफा के स्वामित्व को स्वीकार नहीं किया और स्वतन्त्र 'बादशाह' की उपाधि ग्रहण की। इसके द्वारा उसने न केवल एक नवीन प्रकार की बादशाहत को ही प्रारम्भ किया बल्कि शासन से धर्म को पृथक करने की नीति को भी आरम्भ किया। आर.पी. त्रिपाठी ने बाबर के बारे में लिखा है कि ''मुगल साम्राज्य का वैभव उसकी सैनिक शक्ति पर ही निर्भर न था बल्कि उसकी गैर मुस्लिमों मुख्यतः राजपूतों के प्रति उदार धार्मिक नीति और सांस्कृतिक पक्ष पर बल देने पर भी निर्भर थे। अकबर की महानता को स्वीकार करते हुए भी यह कहा जा सकता है कि उसकी इस नीति का बीज उसके महान बाबा (बाबर) ने डाला था।'' उन्हीं के शब्दों में ''बाबर ने एक नवीन साम्राज्य के निर्माण का ही मार्ग प्रशस्त नहीं किया अपितु उसकी भविष्य की नीति और प्रकृति की ओर भी संकेत कर दिया था। ''उसने भारत में एक ऐसे राजवंश और ऐसी परम्परा को आरम्भ किया जिसकी समता किसी अन्य देश के इतिहास में कम ही पाई जाती है।''

यदि बाबर को हिन्दुस्तान पर विजय प्राप्त करने में सफलता नहीं भी मिली होती और अपने पुत्र के लिए उसने साम्राज्य नहीं छोड़ा होता, तो भी साहित्य जगत में उसकी

स्मृति सदैव जीवित रहती क्योंकि वह अपना जीवनवृत बाबरनामा, के रूप में लिख चुका था।

2.11 सारांश

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में बाबर का नाम शक्तिशाली मुगल साम्राज्य के निर्माता के रूप में दर्ज है। वह एक महान विजेता ही नहीं, महान विद्वान भी था। लेनपूल ने सही ही लिखा है कि ''पूर्व देशों के इतिहास में सबसे अधिक आकर्षक व्यक्तित्व शायद बाबर का ही है और यह तथ्य कि उसने यह विशेषता अपने आत्मचरित्र में भी उतार दी, उसके लिए कम प्रसिद्धी की बात नहीं है। मध्य एशिया और भारतवर्ष, लूटेरे दल और साम्राज्य सरकार, तैमूर और अकबर के मध्य वह एक कड़ी के रूप में अवस्थित हैं। एशिया को पदाक्रांत करने वाली दो जातियां मंगोल और तुर्क तथा उनमें शक्तिशाली प्रतिनिधि चंगेज खाँ और तैमूर का रक्त उसकी धमनियों में मिलकर बह रहा था। खानाबदोश तातारियों के अदम्य शौर्य के साथ उसमें फारस की संस्कृति और नागरिकता का समन्वय किया था।''

2.12 अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. ''बाबर एक महान विजेता था।'' क्या आप सहमत हैं ?
2. भारत में बाबर की विजयों और उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।
3. पानीपत के युद्ध के परिणामों का वर्णन कीजिए।
4. खानवा के युद्ध के कारण और परिणामों का उल्लेख कीजिए।
5. बाबर की भारत में अंतिम विजय का उल्लेख कीजिए।
6. चन्देरी के युद्ध का वर्णन कीजिए।

बोध–प्रश्न :

निम्नलिखित कथनों को पढ़कर सही (√) एवं गलत (x) के चिह्न लगाओ–

(i) बाबर ने मुगल साम्राज्य की नींव रखी। ( )

(ii) बाबर एक महान विजेता था। ( )

(iii) बाबर अशिक्षित था। ( )

(iv) 26 दिसम्बर 1530 को बाबर की मृत्यु हुई। ( )

2.13 शब्दावली :

जिहाद : इस्लाम की रक्षा के लिए धर्म युद्ध

खलीफा : इस्लामी जगत का प्रधान

पादशाह : समप्रभुत्व सम्पन्न शासक

बाबरनामा : बाबर द्वारा लिखित आत्मकथा

तुलगमा : उजबेगों की युद्ध नीति

2.14 बोध–प्रश्नों के उत्तर : (i) √ (ii) √ (iii) x (iv) √

2.15 सहायक ग्रन्थ :

1. Memories of Babur (Translated into English by Mrs. Beveridge)
2. Abul Fazl : Akbarnama, Vol. I (Translated into English by H. Beveridge)
3. Lanepoole, S : Babur (Rulers of Indian Series)
4. Edwards, S.M. : Babur : Diarist and Despot (1926)
5. Erskine, W. : History of India under Babur and Humayun (1854)
6. Dughlat, Mirza Haidar : Tarikh-i- Rashidi (Translated into English by E.D. Ross and N. Elias)

इकाई तृतीय– हुमायूँ की समस्यायें, पराजय एवं पुर्नागमन

इकाई की रूपरेखा :

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 हुमायूँ की समस्यायें

3.2.1 बाबर का विरासत

3.2.2 हुमायूँ के भाई और उसके मिर्जा सम्बन्धी

3.2.3 अफगान

3.2.4 सेना के स्वरूप का राष्ट्रीय न होना

3.2.5 हुमायूँ की व्यक्तिगत दुर्बलताएँ

3.2.6 हुमायूँ द्वारा साम्राज्य विभाजन

3.3 हुमायूँ के प्रयत्न और संघर्ष

3.3.1 कालिंजर पर आक्रमण

3.3.2 दोहरिया का युद्ध और चुनार का प्रथम घेरा

3.3.3 बहादुरशाह से संघर्ष

3.4 हुमायूँ की पराजय

3.4.1 चौसा का युद्ध

3.4.2 कन्नौज या बिलग्राम का युद्ध

3.5 हुमायूँ का निष्कासित जीवन

3.6 हुमायूँ का पुर्नागनम और भारत विजय

3.7 हुमायूँ की मृत्यु

3.8 सारांश

3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.10 बोध–प्रश्नों के उत्तर

3.11 सहायक ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे–

- हुमायूँ की समस्यायें और उनको दूर करने के उसके प्रयत्न
- हुमायूँ के शेरशाह के साथ युद्ध

- हुमायूँ की पराजय के कारण
- हुमायूँ का निष्कासित जीवन
- हुमायूँ का पुनः भारत विजय अभियान
- हुमायूँ की मृत्यु एवं उसका चरित्र

3.1 प्रस्तावना :

बाबर ने अपनी मृत्यु से पहले अपने बड़े पुत्र हुमायूँ को अपना उत्तराधिकारी बनाया। नासिरूद्दीन मुहम्मद हुमायूँ का जन्म 6 मार्च, 1508 ई0 को काबुल में हुआ था। उसकी माता माहिम, बेगम शायद शिया पंथ की थी। उसके छोटे भाई कामरान और अस्करी गुलरूख बेगम से तथा सबसे छोटा हिन्दाल दिलदार बेगम से उत्पन्न बाबर की सन्तान थे। हुमायूँ पानीपत और खानवा के युद्ध में बाबर के साथ था, इसके अतिरिक्त उसने कई अवसरों पर अपनी सैनिक प्रतिभा का परिचय दिया था। हिसार–फिरोजा, बदख्शां और सम्भल की अपनी जागीरों की देखभाल करते हुए उसने शासन का अनुभव प्राप्त किया था। प्रारम्भिक अव्यवस्थाओं के बाद, बाबर की मृत्यु के चार दिन पश्चात 30 दिसम्बर, 1530 को बिना किसी विरोध के 23 वर्ष की आयु में हुमायूँ मुगल सिंहासन पर बैठा।

3.2 हुमायूँ की समस्याऐं :

हुमायूँ ने कांटों का ताज पहना था। हुमायूँ को कुछ समस्याऐं अपने पिता बाबर से विरासत में मिलीं और कुछ उसके सम्बन्धी मिर्जाओं तथा भाइयों ने खड़ी कीं। लेकिन सबसे बड़ी कठिनाई उसके अफगान शत्रु थे जो मुगल वंश को भारत से उखाड़ फेंकने के लिए प्रयत्नशील थे। इसके अतिरिक्त उसकी अपनी व्यक्तिगत कमज़ोरियां उसके भविष्य के लिए हानिकारक सिद्ध हुईं।

3.2.1 बाबर की विरासत :

बाबर ने हुमायूँ के लिए एक विस्तृत साम्राज्य छोड़ा था लेकिन वह साम्राज्य की जड़ो को मजबूत न कर सका था। सम्पूर्ण साम्राज्य को बाबर ने अपने अमीरों में जागीरों के रूप में बांट दिया था। यह व्यवस्था तत्कालिक तौर से सही हो सकती थी लेकिन साम्राज्य को मजबूती देने और भारतीयों का सहयोग और विश्वास प्राप्त करने में विफल थी। बाबर ने स्वयं आर्थिक कठिनाईयों का अनुभव किया था, वह राज्य के आय के साधनों का विस्तार न कर सका था। यह आर्थिक समस्या भी हुमायूँ को विरासत में मिली थी।

3.2.2 हुमायूँ के भाई और उसके मिर्चा सम्बन्धी :

बाबर ने अपनी मौत के समय हुमायूँ को अपने भाईयों से अच्छा व्यवहार करने की सलाह दी थी। हुमायूँ के तीनों भाई अयोग्य और गैर वफादार सिद्ध हुए। व्यक्तिगत दृष्टि से साहसी और बहादुर होते हुए भी उनमें से कोई भी परिस्थितियों को समझकर उनके अनुकूल चलने वाला न था। जब की मुगल वंश को एकता की आवश्यकता थी तब उन्होंने अपने व्यक्तिगत स्वार्थों, अधिकारों और महत्वाकांक्षाओं पर बल दिया।

मुगल–राजवंश से सम्बन्धित विभिन्न चगुताई तुर्क बड़ी–बड़ी जागीरों को प्राप्त करके महत्वाकांक्षी हो गए थे। बाबर के बहनोई मेंहदी ख्वाजा ने बाबर की मृत्यु पर ही सिंहासन को अपने अधिकारों में करने का स्वप्न देखा यद्यपि वह सफल न हो सका। हुमायूँ के दो अन्य निकट के सम्बन्धियों मुहम्मद जमान मिर्जा और मुहम्मद सुल्तान मिर्जा ने समय–समय पर हुमायूँ के विरूद्ध विद्रोह किया।

3.2.3 अफगान :

हुमायूँ के प्रमुख शत्रु अफगान थे। वे यह नहीं भूल सके थे कि कुछ वर्ष पूर्व दिल्ली पर उनका आधिपत्य था। यह भी सत्य था कि अफगान शक्ति उस समय बिखर गई थी, लेकिन पूरी तरह समाप्त नहीं हुई थी। स्थान–स्थान पर वे विद्रोह का झंडा बुलन्द कर रहे थे। बंगाल का शासक उनकी मदद कर रहा था। गुजरात का शासक बहादुर शाह शक्तिशाली हो गया था। जिसने मालवा भी जीत लिया था, फतह खाँ, कुतुब खाँ, आलम खाँ लोदी जैसे अफगान उसके संरक्षण में थे। शेर खाँ और बंगाल के शासक से उसका पत्र व्यवहार चल रहा था। अफगान सरदार शेर खाँ दक्षिणी विहार में अपनी शक्ति को संगठित कर रहा था। जो कुछ समय पश्चात हुमायूँ का सबसे बड़ा शत्रु सिद्ध हुआ।

3.2.4 सेना के स्वरूप का राष्ट्रीय न होना :

मुगलों की सेना का स्वरूप राष्ट्रीय न था। उसमें उजबेग, मुगल, तुर्क, ईरानी, अफगान, भारतीय आदि सम्मिलित थे जो अपनी ही जाति के सरदारों की अधीनता में थे। ऐसी सेना में एकता का अभाव था। यह सेना योग्य सेनापतित्व के अभाव में दुर्बल थी।

3.2.5 हुमायूँ की व्यक्तिगत दुर्बलताएँ :

ऐसे समय में जब मुगल साम्राज्य संकटों से घिरा हुआ था, उसे एक कठोर, अनुशासन प्रिय और एक योग्य सेनापति–शासक की आवश्यकता थी। हुमायूँ में इन गुणों का अभाव था। हुमायूँ साहसी होते हुए भी योग्य सेनापति न था और बुद्धिमान होते हुए भी नीतिज्ञ न था। उसमें परिस्थितियों को ठीक प्रकार से समझाने की योग्यता न थी।

नेतृत्व के अभाव में सेना दुर्बल हो गई। लेनपूल ने लिखा– ''हुमायूँ की असफलता का एक मुख्य कारण उसकी सुन्दर परन्तु विवेकरहित दयालुता थी।''

3.2.6 हुमायूँ द्वारा साम्राज्य–विभाजन :

हुमायूँ ने अपने भाइयों को विस्तृत भू–प्रदेश दिए। आरम्भ में ही उसने अस्करी को सम्भल, हिन्दाल को मेवात और कामरान को काबुल तथा कन्धार प्रदान कर दिए। बाद में उसने कामरान को हिसार–फिरोज़ां पर भी अधिकार कर लेने दिया। ए0एल0 श्रीवास्तव के अनुसार ''यह हुमायूँ की एक बड़ी भूल थी क्योंकि जब मुगल–राज्य को एकता की आवश्यकता थी, हुमायूँ ने उसे टुकड़ों में बाँट दिया।''

3.3 हुमायूँ के प्रयत्न और संघर्ष :

हुमायूँ ने अपनी समस्याएँ को दूर करने के प्रयत्न किए। विरोधी शक्तियों के अनियन्त्रित होने के पहले प्रारम्भिक लड़ाइयों में भाग्य ने हुमायूँ का साथ दिया।

3.3.1 कालिंजर पर आक्रमण :

गद्दी पर बैठने के पाँच यह छः महीनों के बाद वह बुन्देलखण्ड में कालिंजर के दुर्ग पर घेरा डालने के लिए सेना लेकर चला। उसे यह संदेह था कि इसका राजा अफगानों के साथ सहानुभूति रखता था। राजा प्रतापरूद्रदेव से कुछ रकम वसूल करने के बाद, पूर्व में अफगानों के संकट का सामना करने के लिए, उसे लौट आना पड़ा।

3.3.2 दोहरिया का युद्ध और चुनार का प्रथम घेरा :

दोहरिया में अफगानों पर निर्णयात्मक रूप से उसकी विजय हुई तथा उसने जौनपुर से महमूद लोदी को खदेड़ भगाया।

अब हुमायूँ ने चुनार गढ़ को घेर लिया, जो उस समय अफगान नायक शेर खाँ के अधीन था। परन्तु शीघ्र ही उसने उसे छोड़ दिया तथा बिना उस बढ़ते हुए अफगान नायक का पूर्ण दमन किए एवं अफगान नायक शेर खाँ द्वारा दिखाई हुई ''बिल्कुल बेमन की अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार हुमायूँ ने उसे स्वच्छन्दता से अपने साधन एवं शक्ति को बढ़ाने का अवसर दे दिया क्योंकि उसे गुजरात के शासक बहादुरशाह के बढ़ते हुए दावे को रोकने के लिए पश्चिम की ओर जाना पड़ा।

3.3.3 बहादुरशाह से संघर्ष

गुजरात के शासक बहादुरशाह ने निश्चित रूप से कुपित होने का कारण प्रस्तुत किया था। उसने खुलेआम बहुत से अफगान शरणार्थियों तथा हुमायूँ के शत्रुओं को आश्रय और सहायता दी थी। मेवाड़ के पतन के कारण उसे अपना राज्य विस्तार करने का अवसर मिल गया। मालवा को अपने राज्य में मिलाकर उसने चित्तौड़ के राजपूतों के प्रसिद्ध दुर्ग पर घेरा डाल दिया। उसी समय हुमायूँ 1534 ई0 के अन्त में, अफगानों पर

अपनी विजय का पूरा लाभ उठाये बिना ही मालवा पहुँचा। गुजरातियों द्वारा बुरी तरह परेशान किए जाने पर मेवाड़ की रानी कर्णावती ने बहादुरशाह के विरूद्ध हुमायूँ से सहायता मांगी। पर हुमायूँ ने इस पर ध्यान नहीं दिया और न स्वयं के लाभ के लिए बहादुशाह पर शीघ्र आक्रमण किया। उल्टे वह प्रतीक्षा करता रहा। इधर बहादुरशाह ने राजपूतों को पराजित कर दिया। हुमायूँ ने राजपूतों की अपील पर ध्यान न देकर प्राणघाती भूल की। वास्तव में उसने उनकी सहानुभूति पाने के स्वर्णिम अवसर को खो दिया था। तत्काल के लिए उसने बहादुरशाह की सेना को मंदसोर के निकट एक युद्ध में पराजित कर उसे मांडू से चम्पानेर एवं अहमदाबाद तथा वहाँ से खभांत तक खदेड़ दिया। पर गुजरात के शासक पर हुमायूँ की विजय क्षणिक थी। विजय की उमंग में वह, उसका भाई अस्करी तथा उसके अधिकतर सैनिक भोज एवं आमोद–प्रमोद में लिप्त हो गए, जिसका स्वभाविक परिणाम यह हुआ कि ''उसके (राज्य के) सारे काम अव्यवस्थित हो गए तथा उसकी अपनी छावनी तक शोरगुल एवं अवज्ञा का रंगमंच बन गई''। गुजरात के सुल्तान ने इससे लाभ उठाकर मुगलों से अपने खोये हुए प्रदेश फिर ले लिए। हुमायूँ पुनः इसे अधीन करने की सोच भी न सका, क्योंकि उसका ध्यान पूर्व की ओर आकृष्ट हो गया, जहाँ अफगान अत्यन्त शक्तिशाली बन बैठे थे। ज्यों ही वह लौटने के लिए मुड़ा कि मालवा भी उसके हाथ से निकल गया। इस प्रकार एक वर्ष में दो बड़े प्रान्तों की शीघ्रता से विजय प्राप्त हुई, पर अगले वर्ष तुरन्त खो गए।

3.4 हुमायूँ की पराजय :

जिस समय हुमायूँ बहादुरशाह के साथ संघर्ष कर रहा था, शेर खाँ विहार और बंगाल में अपनी शक्ति को दृढ़ कर रहा था। विभिन्न अफगाान सरदार उसके नेतृत्व में इकट्ठे हो रहे थे। हुमायूँ ने शेर खाँ की इस बढ़ती शक्ति की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। शेर खाँ ने बंगाल की राजधानी गौड़ को भी जीत लिया। 15 अगस्त, 1538 को हुमायूँ गोड़ पहुँचा तो उसे वह स्थान वीरान मिला। शेर खाँ और उसकी सेना पहले ही बंगाल छोड़ चुके थे। हुमायूँ ने आठ महीने बंगाल में ऐशोआराम किया और दिल्ली, आगरा या बनारस तक से अपना सम्पर्क नहीं रखा। इस दौरान अफगानों ने बनारस, कड़ा, कन्नौज, सम्भल आदि स्थानों पर अधिकार कर लिया, जौनपुर और चुनार गढ़ को घेर लिया और इस प्रकार हुमायूँ के वापस लौटने के मार्ग को बन्द कर दिया। उधर आगरा में हिन्दाल ने स्वयं को स्वतन्त्र बादशाह घोषित कर दिया। ये सूचनाएँ मिलने पर हुमायूँ मार्च 1539 में गौड़ से चला।

3.4.1 चौसा का युद्ध (26 जून 1539 ई0) :

वापसी के लिए हुमायूँ ने गंगा के दक्षिण तट को पार कर आगरा जाने वाली ग्रांट ट्रंक रोड को चुना। यह फैसला अनुभवी अधिकारियों की सलाह के विरूद्ध था क्योंकि इस मार्ग पर अफगानों का अधिकार था। उसी रास्ते से आगे बढ़ते हुए हुमायूँ ने एक बार फिर गंगा को पार किया और उसके उत्तरी तट पर आ गया जहाँ चौसा का मैदान था। शेर खाँ भी अपनी सेना लेकर इसी स्थान पर आ गया। हुमायूँ को अपने भाइयों से कोई सहायता न मिली और न ही उसकी सेना व्यवस्थित थी। शेर खाँ ने वर्षा की प्रतीक्षा की क्योंकि मुगल सेना गंगा और कर्मनाशा नदी के बीच में थी और वह भाग नीचा था। वर्षा के कारण मुगल सेना कठिनाई में फंस सकती थी। तीन महीने तक दोनों सेनाऐं एक दूसरे के सामने खड़ी रहीं। उस समय संधि की बातचीत भी हुई लेकिन कुछ नतीजा नहीं निकला। वर्षा आरम्भ होते ही 25 जून, 1539 की रात अफगान सेना ने अचानक आक्रमण कर दिया। मुगलों में भगदड़ मच गई और वह बड़ी संख्या में मारे गए अथवा भाग गए। स्वयं हुमायूँ भी बड़ी कठिनाई से निज़ाम नाम के एक भिश्ती की सहायता लेकर गंगा पार कर सका। हुमायूँ और अस्करी आगरा चले गए। शेर खाँ ने मुगल बेगमों को ससम्मान वापस भेज दिया।

शेर खाँ ने इस युद्ध के पश्चात स्वयं को सुल्तान घोषित किया और 'शेरशाह' की उपाधि ग्रहण की। उसने शीघ्र ही बंगाल पर भी अधिकार कर लिया और पूर्व में मुगलों की शक्तिओं को पूर्णतः नष्ट कर कन्नौज आ गया।

3.4.2 कन्नौज या बिलग्राम का युद्ध (17 मई, 1540 ई0) :

हुमायूँ ने अपने भाइयों के साथ मतभेदों में समय नष्ट किया और अन्ततः हिन्दाल को ही माफ नहीं कर दिया था बल्कि विद्रोही सुल्तान मिर्जा को भी माफ कर दिया था। इसके बावजूद हुमायूँ की उदारता उसके भाइयों को एक न कर सकी। कामरान का स्वास्थ्य खराब होने से उसे हुमायूँ पर संदेह हो गया और वह अपनी सेना लेकर लाहौर चला गया। हुमायूँ अपनी सेना लेकर कन्नौज की ओर चल दिया। कन्नौज के निकट दोनों की सेनाऐं एक–दूसरे के सामने आ गईं। परन्तु देढ़ माह तक दोनों ने एक–दूसरे पर आक्रमण नहीं किया। 15 मई को घनघोर वर्षा हुई, जिससे मुगल खेमों में पानी भर गया। 17 मई को जबकि मुगल सेना अपने खेमों को ऊँचे स्थान पर ले जाने का प्रयत्न कर रही थी, अफगानों ने आक्रमण कर दिया। मुगलों ने डटकर मुकाबला किया लेकिन वे अपने तोपखानों का प्रयोग न कर सके। शेरशाह ने मुगल युद्ध नीति का प्रयोग उन्हीं के विरूद्ध किया और सफल हुआ। अन्त में मुगल सेना के पैर उखड़ गए। हुमायूँ और उसके भाई बड़ी कठिनाई से अपनी जान बचाकर भाग सके।

यह युद्ध निर्णायक सिद्ध हुआ था। मुगल बिखर गए। हुमायूँ लाहौर भाग गया लेकिन वह अपने भाइयों के साथ मिलकर भी कोई प्रयत्न न कर सका। शेरशाह उसका पीछा कर रहा था, उसने आसानी से आगरा और दिल्ली पर अधिकार कर लिया। उधर हुमायूँ के मार्ग में उसके भाई कामरान ने रूकावटें पैदा कीं। अंत में वह सिंध चला गया जहाँ उसका छोटा भाई हिन्दाल भी गया हुआ था।

3.5 हुमायूँ का निष्कासित जीवन (1540–1555 ई0):

हुमायूँ, शेरशाह से परास्त होकर सिंध चला गया और अगले 15 वर्ष वह निष्कासित के रूप में दर–दर भटकता रहा। इसी दौरान उसने हमीदाबानू बेगम से निकाह किया जो हिन्दाल के गुरू मीर अली अकबर की पुत्री थी। कठिन दौर में उसके भाईयों और विश्वासपात्रों ने उसका साथ छोड़ दिया। अमरकोट के राजा वीरसाल के संरक्षण में उसके पुत्र अकबर का जन्म हुआ। 1544 में हुमायूँ ईरान के शाह तहमास्प के संरक्षण में चला गया। कुछ शर्तों पर वहाँ से मदद मिलने पर हुमायूँ ने कामरान से काबुल और कंधार जीत लिया। हिन्दाल और यादगार मिर्जा उसके साथ आ गए। बैरमखाँ उसका वफादार सिद्ध हुआ। हुमायूँ ने कामरान और अस्करी को बार–बार माफ किया लेकिन अंत में उन्हें दंडित किया। हिन्दाल हुमायूँ की ओर से युद्ध करता हुआ मारा गया।

3.6 हुमायूँ का पुर्नागमन और भारत विजय :

नवम्बर 1553 में शेरशाह के उत्तराधिकारी इस्लाम शाह की मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु के बाद अफगानों में फूट फैल गयी। अफगानों में आपस में संघर्ष चल रहा था, ऐसी स्थिति में हुमायूँ ने भारत पर पुनः आक्रमण किया। नवम्बर 1554 से 1555 के आरम्भ तक लाहौर तक का प्रदेश सरलता से उसके अधिकार में आ गया। अफगानों के आपसी संघर्ष में सिकन्दरशाह विजयी हो चुका था, जिसने एक बड़ी सेना तातार खाँ और हैबत खाँ के नेतृत्व में मुगलों को रोकने को भेजी। 15 मई, 1555 को मच्छीवारा का युद्ध हुआ, जिसमें मुगलों की जीत हुई। सम्पूर्ण पंजाब पर मुगलों का अधिकार हो गया। अब मुगलों का मुकाबला करने के लिए सिकन्दर सूर स्वयं बढ़ा। 22 जून, 1555 को सरहिन्द का युद्ध हुआ। हुमायूँ के नेतृत्व में मुगलों की जीत हुई। सिकन्दर सूर भाग गया। यह युद्ध निर्णायक सिद्ध हुआ। हुमायूँ ने आगे बढ़कर दिल्ली पर अधिकार कर लिया तथा आस–पास के सभी क्षेत्रों को अपने नियन्त्रण में ले लिया।

3.7 हुमायूँ की मृत्यु :

हुमायूँ अभी अपने भारतीय विजित क्षेत्रों का प्रबन्ध भी नहीं कर पाया था कि उसका अन्त समय आ गया। एक दिन स्वयं बनवाये पुस्तकालय 'दीनपनाह' से उतर

रहा था, कि सीढ़ियों से पैर फिसल गया। इसी चोट से 27 जनवरी, 1556 को हुमायूँ की मृत्यु हो गयी।

3.8 सारांशः

हुमायूँ ने अपने पिता बाबर से एक विस्तृत साम्राज्य प्राप्त किया था लेकिन अपने उदार दृष्टिकोण और भाइयों के असहयोग के कारण जल्द ही उसे खो दिया। उसकी इस असफलता और पराजय में उसकी व्यक्तिगत दुर्बलताओं तथा सही समय पर सही निर्णय लेने की अक्षमता जितनी उत्तरादयी है उतनी ही उत्तरदायी उसकी भाग्यहीनता है। इसीलिए कई इतिहासकार उसे 'भाग्यहीन हुमायूँ' पुकारते हैं। व्यक्तिगत गुणों से वह प्रशंसनीय है। वह सुसंस्कृत, शिक्षित, विद्धान, सहृदय, उदार, क्षमाशील, सहिष्णु तथा विद्वता का पोषक था। उसने सिंहासन पर बैठने से लेकर मृत्यु तक लगातार संघर्ष किया और उसी संघर्ष और जीवटता के बल पर अपने खोए हुए साम्राज्य की पुर्नप्राप्ति की। हुमायूँ की असफलताओं को इंगित करते हुए लेनपूल ने लिखा है कि ''हुमायूँ जीवनपर्यन्त लड़खड़ाता रहा और लड़खड़ाता हुए ही उसकी मृत्यु हुई।''

3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. हुमायूँ की समस्याओं का वर्णन कीजिए।
2. हुमायूँ तथा गुजरात के शासक बहादुरशाह के सम्बन्धों की चर्चा कीजिए।
3. हुमायूँ एवं शेरशाह के युद्धों का वर्णन कीजिए।
4. हुमायूँ की पराजय तथा उसके निष्कासित जीवन पर एक लेख लिखिए।
5. हुमायूँ द्वारा पुनः भारत विजय अभियान पर एक संक्षित लेख लिखिए।

बोध–प्रश्न :

निम्नलिखित कथनों को पढ़कर सही (√) एवं गलत (x) के चिह्न लगाओ–

(i) हुमायूँ को कुछ समस्याऐं विरासत में मिलीं थीं। ( )

(ii) चौसा के युद्ध में हुमायूँ की विजय हुई। ( )

(iii) हुमायूँ की मृत्यु पुस्तकालय से गिरकर हुई। ( )

3.10 बोध–प्रश्नों के उत्तर : (i) √ (ii) x (iii) √

3.11 सहायक ग्रन्थः

1. Memories of Babar (Translated into English by Mrs. Beveridge)
2. Gulbadan Begum, Humayunnama (Translated into English by Mrs. Beveridge)
3. Prasad Ishwari, Hamayun and His Times, Elliot & Dowson, History of India etc. Vol-V

4. Haig, Woolsely, Cambridge History of India, Vol- IV, Chap. II
5. श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल, भारत का इतिहास (1000–1707)
6. गुलबदन बेगम, हुमायूँनामा, अनुवाद हिन्दी, ब्रजरत्न दास
7. R.S. Awasthi : Mughal Emperor Humayun

इकाई चतुर्थः द्वितीय अफगान साम्राज्य, शेरशाह की उपलब्धियाँ एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा :

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 शेरशाह का प्रारम्भिक जीवन

4.3 शेरशाह की शक्ति का विस्तार

4.4 साम्राज्य के संघर्ष

4.4.1 हुमायूँ द्वारा चुनार का घेरा और शेरशाह का प्रतिरोध

4.4.2 शेरशाह की बंगाल विजय

4.4.3 शेरशाह का हुमायूँ से संघर्ष

4.5 शेरशाह और साम्राज्य विस्तार

4.6 शासन प्रबन्धन

4.6.1 प्रांतीय प्रशासन

4.6.2 भूराजस्व सुधार

4.6.3 जनहित कार्य

4.7 शेरशाह का मूल्यांकन

4.8 सारांश

4.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.10 शब्दावली

4.11 बोध–प्रश्नों के उत्तर

4.12 सहायक ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे–

- शेरशाह का प्रारम्भिक जीवन और साम्राज्य प्राप्ति के लिए इसके संघर्ष के विषय में
- शेरशाह की विजयें और उसके साम्राज्य का विस्तार
- शेरशाह की भूमिका एक शासक प्रबन्धक के रूप में
- शेरशाह का मूल्यांकन और इतिहास में स्थान

4.1 प्रस्तावना :

हुमायूँ का राज्यकाल लगभग पन्द्रह वर्षों के अन्तर से दो भागों में बंट गया था। इस अन्तरकाल में सूर–राजवंश ने, जिसकी स्थापना महान अफगान सरदार शेरशाह ने की थी। उत्तरी भारत के अधिकांश भागों पर अपना अधिकार जमा लिया था। भारतीय इतिहास में इस सूर राजवंश के शासनकाल को द्वितीय अफगान साम्राज्य के नाम से जाना जाता है।

पानीपत एवं घाघरा में बाबर की विजयों के परिणामस्वरूप अफगान नायकों का पूर्ण उन्मूलन नहीं हुआ। नव–स्थापित विदेशी शासन के विरुद्ध वे असंतोष से खौल रहे थे। उन्हें केवल एक पराक्रमी व्यक्ति के प्रथप्रदर्शन की आवश्यकता थी, जो उनके छिटपुट प्रयत्नों को इस शासन के विरुद्ध एक संगठित राष्ट्रीय प्रतिरोध के रूप में मिल गया, जिसने अफगान शक्ति का पुनरूत्थान किया तथा नवस्थापित मुगल शक्ति को निकालकर भारत में एक गौरवपूर्ण शासन स्थापित किया। यद्यपि यह बहुत कम समय तक टिक सका।

4.2 शेरशाह का प्रारम्भिक जीवन :

अफगान पुनर्जागरण के नायक शेर खाँ का जीवन बाबर के जीवन की तरह आकर्षक है तथा महान मुगल अकबर के जीवन से कम उद्देश्य पूर्ण नहीं है। उसके बचपन का नाम फरीद था। 1522 ई0 में बिहार के शासक बहार खाँ लोहानी के यहाँ नौकरी करते हुए उसने अकेले ही शेर को मार डाला। इस अवसर पर उसके स्वामी ने उसे शेर खाँ की उपाधि दी। उसका दादा इब्राहिम जो सूर खानदान का एक अफगान था, पेशावर के निकट रहता था। उसका पिता जौनपुर के सूबेदार उमर खाँ सरवानी भी सेवा में था जिसने उसके पिता हसन को सहसाराम में एक जागीर दी थी। शेर खाँ बाईस वर्ष की आयु में अपनी सौतेली माँ से कुपित होकर, घर छोड़कर जौनपुर चला गया।

अपने पिता की मृत्यु के पश्चात शेर खाँ ने राजकीय फरमान के बल पर, अपनी पैतृक जागीर पर अधिकार कर लिया। मुगलों की सफलता से प्रभावित होकर तथा भविष्य में लाभ की आशा से वह अब बाबर की छावनी में सम्मिलित हो गया। वहाँ वह अप्रैल 1527 से लेकर जून 1528 ई0 तक रहा। बाबर को उसकी पूर्वी लड़ाइयों में उसने जो बहुमूल्य सहायता दी, उसके बदले बाबर ने उसे सहसाराम लौटा दिया।

4.3 शेरशाह की शक्ति का विस्तार :

शेर खाँ ने शीघ्र ही मुगलों की नौकरी छोड़ दी। वह बिहार लौट आया। यहाँ वह बिहार के शासक बहार खाँ लोहानी जिसने अब स्वयं को मुहम्मदशाह के नाम से स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया था, के पुत्र जलाल खाँ का संरक्षक नियुक्त हुआ। मुहम्मदशाह की मृत्यु के बाद, दक्षिणी बिहार का शासन प्रबन्ध शेर खाँ ने अपने हाथों में ले लिया क्योंकि जलाल खाँ अभी बच्चा था। 1529 में बंगाल के शासक नुसरत खाँ ने दक्षिणी बिहार पर आक्रमण किया परन्तु शेर खाँ ने उसे परास्त कर दिया। लोहानी वंश उससे ईर्ष्यालू हो गए, उन्होंने शेर खाँ की हत्या का प्रयत्न किया, असफल होने पर वे अल्पव्यस्क जलाल खाँ को लेकर बंगाल भाग गए। जलाल खाँ के भाग जाने से शेर खाँ का मार्ग स्वतः ही साफ हो गया। उसने 'हज़रत–ए–आला' की उपाधि ग्रहण की और दक्षिण बिहार का वास्तविक स्वामी बन बैठा। 1530 में उसने चुनार के किलेदार ताज खाँ की विधवा पत्नी लाड मलिका से विवाह करके न केवल चुनार के शक्तिशाली किले पर अधिकार कर लिया बल्कि बहुत सी सम्पत्ति भी प्राप्त की।

4.4 साम्राज्य के लिए संघर्ष :

दक्षिणी बिहार के अधिपत्य और बंगाल की सेना पर विजय ने शेर खाँ की महत्वाकांक्षाओं को बढ़ा दिया। उसने अफगानों की मुगलों के प्रति घृणा का लाभ उठाया और दूर–दूर से अफगानों को अपने साथ आने के लिए आह्वान किया। परन्तु तब भी उस समय तक शेर खाँ अफगानों का एक मात्र नेता न था। 1530 में हुमायूँ मुगल बादशाह बन चुका था। महमूद लोदी के राजनीति से हटते ही शेर खाँ को अफगानों के नेतृत्व का अवसर प्राप्त हो गया।

4.4.1 हुमायूँ द्वारा चुनार का घेरा और शेरशाह का प्रतिरोध :

सन् 1532 ई0 में हुमायूँ ने चुनार का घेरा डाला परन्तु चार महीने बाद भी उसे सफलता न मिली। चुनार का किला शेर खाँ के पास ही रहा शेर खाँ ने अपने पुत्र कुतुब खाँ के नेतृत्व में 5000 सैनिक हुमायूँ की सेवा में भेज दिये। शेर खाँ के लिए यह समझौता हानिकारक न था। उसका पुत्र मन्दसौर के युद्ध के पश्चात हुमायूँ को छोड़कर उसके साथ आ मिला।

4.4.2 शेरशाह की बंगाल विजय :

शेरशाह को बंगाल की ओर बढ़ने का अवसर उस समय मिला, जब हुमायूँ मालवा और गुजरात में व्यस्त था। बंगाल का शासक महमूदशाह अयोग्य था। उसने भगोड़े जलाल खाँ का पक्ष लेकर बिहार पर आक्रमण किया। इस आक्रमण के बारे में कानूनगो महोदय ने लिखा है कि ''इस आक्रमण का अंत मध्ययुगीन भारत के इतिहास

के निर्णयात्मक युद्धों में से एक युद्ध में होना था। यह शेरशाह के जीवन की दिशा मोड़ देने वाली एक महत्वपूर्ण घटना थी।'' 1534 में सूरजगढ़ का महत्वपूर्ण युद्ध हुआ जिसमें शेरशाह की पूर्ण विजय हुई और उसे भूमि, तोपखाना, हथियार, हाथी आदि सब कुछ मिला। 1535 में शेर खाँ ने बंगाल पर आक्रमण किया और महमूदशाह ने 13 लाख सोने के सिक्के देकर उससे संधि कर ली। 1537 में शेर खाँ ने पुनः इस आधाार पर बंगाल पर आक्रमण किया कि महमूदशाह ने उसे वार्षिक कर नहीं दिया था। सत्य यह है कि शेर खाँ बंगाल के राज्य को समाप्त करने का अथवा उसकी सम्पत्ति लूटने का पूर्ण निश्चय कर चुका था। हुमायूँ से उसे कोई भय न था बल्कि, सम्भवतया, यह हुमायूँ से युद्ध करने की पृष्ठभूमि थी। महमूदशाह अपनी सुरक्षा न कर सका और अपनी राजधानी गौड़ से भाग गया तथा हुमायूँ से सहायता की याचना की।

4.4.3 शेरशाह का हुमायूँ से संघर्ष :

हुमायूँ शेर खाँ की शक्ति को दबाने के लिए बढ़ा 1537–38 में हुमायूँ ने 6 माह चुनार को जीतने में लगाए। उस समय तक शेर खाँ गौड़ को जीतकर लूट चुका था और उसकी सेना वापस आ गयी थी। 1538 में शेर खाँ ने चालाकी से दक्षिणी बिहार के एक शक्तिशाली किले रोहतासगढ़ पर अधिकार कर लिया। शेर खाँ ने उसे अपने परिवार की सुरक्षा के लिए राजा से मांगा था। किले में प्रवेश करने के पश्चात उसने वहाँ से उस हिन्दू राजा को निकाल दिया। इसी किले में उसने अपने परिवार और खजाने को सुरक्षित किया और हुमायूँ से संघर्ष की तैयारी की। हुमायूँ बिना बिहार को जीते हुए बंगाल चला गया और वहाँ 6 या 7 माह रहा। इस बीच शेर खाँ ने उसके वापस लौटने के मार्ग को रोक दिया। 1539 में चौसा का युद्ध हुआ जिसमें शेर खाँ की विजय हुई और हुमायूँ पराजित होकर भाग गया। इस विजय के पश्चात अपने सरदारों की सहमति से शेर खाँ ने 'शेरशाह–सुल्तान–ए–आदिल' की उपाधि ग्रहण की और सुल्तान बन बैठा। उसने अपने नाम का खुत्बा पढ़वाया और सिक्के चलवाए। इस प्रकार चौसा के युद्ध के बाद शेरशाह बंगाल और बिहार का सुल्तान बन गया। 1540 ई0 में कन्नौज या बिलग्राम के युद्ध में शेरशाह ने हुमायूँ को पुनः पराजित किया। इसके पश्चात शेरशाह ने दिल्ली, आगरा, सम्भल, ग्वालियर, लाहौर आदि सभी स्थानों पर अपना अधिकार कर लिया, हुमायूँ को भारत से निकालने के लिए एक सेना भेज दी। इस प्रकार मुगलों को भारत से निकालकर एक बार फिर उत्तरी भारत में अफगान साम्राज्य को स्थापित किया।

4.5 शेरशाह और साम्राज्य विस्तार :

शेरशाह तत्परता एवं शक्ति के साथ, सिंधु एवं झेलम के ऊपरी भागों में स्थित गक्कर देश की लड़ाकू पहाड़ी जातियों को अधीन करने के लिए सेना लेकर रवाना हुआ। उसने उस राज्य को रौंद डाला पर गक्करों को पूर्णतः अधीन न कर सका। कारण यह था कि मार्च 1541 ई0 में उसे बंगाल जाना पड़ा जहाँ उसके प्रतिनिधि ने विद्रोह कर दिया था। उसने विद्रोही को सेवा से हटा दिया तथा प्रांतीय शासन के सैनिक ढ़ांचे को बदल दिया। उस प्रांत को कई जिलों में विभक्त कर दिया गया, जिसमें प्रत्येक पर सीधे उसके द्वारा नियुक्त एवं केवल उसके प्रति उत्तरदायी अफसर शासन करता था। यह व्यवस्था एकदम नवीन, मौलिक एवं व्यवहारिक थी।

इसके बाद शेरशाह ने पश्चिम के राजदूतों के विरुद्ध अपना ध्यान फेरा। 1542 ई0 में मालवा को अधीन कर वह मध्य भारत में रायसीन के पूरनमल के विरुद्ध सेना लेकर चल पड़ा। कुछ प्रतिरोध के उपरान्त रायसीन के दुर्ग की संरक्षक सेना ने आत्मसमर्पण कर दिया तथा राजपूत इस शर्त पर दुर्ग खाली करने को तैयार हो गए कि मालवा की सीमा के बाहर जाते समय उन्हें ''कष्ट नहीं दिया जायगा'' परन्तु जैसे ही वे किले से बाहर निकले अफगान सैनिक उन पर टूट पड़े। राजपूतों ने अपनी स्त्रियों एवं बच्चों को अपमान से बचाने के लिए उनकी जानें ले लीं। स्वयं वीरतापूर्वक लड़ते हुए मारे गए। सिंध और मुल्तान पंजाब के सूबेदार द्वारा अफगान साम्राज्य में मिला लिए गए। अब अधीन करने के लिए शेरशाह का केवल एक ही शत्रु बच गया था, वह था मारवाड़ का राजपूत शासक मालदेव, जो उत्कृष्ट सेनापति था। शेरशाह ने 1544 ई0 में इस राठौर नायक पर आक्रमण किया। राठौरों से उनके अपने देश में खुले रूप से युद्ध करने का जोखिम उठाना अनुचित समझकर शेरशाह ने छल का सहारा लिया। उसने मालदेव के पास कई जाली पत्र भेजे, जिनसे यह प्रतीत होता था कि राजपूत सेनापतियों ने शेरशाह को सहायता देने का वचन दिया है। शेरशाह जैसे चाहता था वैसा ही हुआ। मालदेव ने मैदान छोड़ने का फैसला किया। इसके बावजूद जयता और कुम्पा जैसे सरदारों ने विश्वासघात के कलंक को धोने के लिए अपने कुछ हजार राजपूत सैनिकों के साथ शेरशाह पर आक्रमण किया। एक–एक राजपूत अंत तक बहादुरी से लड़ता हुआ मारा गया। लेकिन जब मालदेव को अहसास हुआ तब तक देर हो चुकी थी। राजपूत सेना अव्यवस्थित हो गयी थी। शेरशाह की यह विजय कूटनीतिक विजय थी, अन्यथा राजपूतों के शौर्य से शेरशाह इतना अधिक प्रभावित हुआ था कि उसने कहा– ''मुट्ठी भर बाजरे के लिए मैं हिंदुस्तान के साम्राज्य को प्रायः खो चुका था।''

इस सफलता के बाद शेरशाह ने अजमेर से लेकर आबू तक फैले हुए सम्पूर्ण प्रदेश को अधीन कर लिया तथा कालिंजर के दुर्ग पर घेरा डालने के लिए सेना लेकर रवाना हुआ। वह दुर्ग को अधिकृत करने में सफल हुआ, पर अचानक बारूद विस्फोट में घायल होने पर 22 मई, 1545 ई0 को उसकी मृत्यु हो गई। कानूनगो महोदय के शब्दों में– ''इस प्रकार एक महान सैनिक और राजनीतिज्ञ का अन्त अपने जीवन की विजयों और लोकहितकारी कार्यों के मध्य में ही हो गया.....।''

4.6 शासन प्रबन्धन :

सैनिक और असैनिक दोनों ही मामलों में शेरशाह ने संगठनकर्ता की दृष्टि से शानदार योग्यता का परिचय दिया है। यह विचार ई0वी0 हेवेल ने प्रकट किया है। शेरशाह एक साहसी योद्धा एवं सफल विजेता ही नहीं, बल्कि एक ऐसी शासन पद्धति का निर्माता था, जिसकी प्रशंसा उसके शत्रु मुगलों के स्तुति–गायकों ने भी की थी। पाँच वर्षों के इसके छोटे राज्यकाल में शासन के प्रत्येक विभाग में लोकहितकारी एवं विवेकपूर्ण परिवर्तन किए गए। इर्स्किन ने लिखा है ''अकबर से पहले के सभी शासकों की तुलना में शेरशाह में अपनी प्रजा के लिए कानून–निर्माण और संरक्षण की दृष्टि से कार्य करने की भावना सबसे अधिक थी।''

कानूनगो ने शेरशाह को अकबर से भी श्रेष्ठ रचनात्मक बुद्धि वाला और राष्ट्र निर्माता बताया है।

उसने किसानों से कहा था ''जो कुछ भी तुम कहना चाहते हो, सर्वदा स्वयं आकर मुझे बताओ। मैं किसी को भी तुम पर अत्याचार नहीं करने करने दूँगा।'' अपनी जागीर का प्रबन्ध करते समय एवं जलाल खाँ के संरक्षक के रूप में उसे शासन का लम्बा अनुभव था। मुगलों के सम्पर्क में आने पर उसने इनकी शासन व्यवस्था और सैनिक प्रबन्धन को भी समझा। सुल्तान बनने के बाद शेरशाह ने अपने अनुभव के साथ परिश्रम को भी सम्मिलित कर दिया। वह प्रतिदिन 16 घण्टे कार्य करता था। सेना, संगठन भर्ती, कवायद, न्याय, लगान के कागज आदि शासन के सभी कार्यों की स्वयं देखभाल करता था।

4.6.1 प्रांतीय प्रशासन :

शासन की सुविधा के लिए सम्पूर्ण साम्राज्य सैतालीस इकाइयों (सरकारों) में विभक्त था, जिसमें से प्रत्येक पुनः कई परगनों में विभाजित थीं। परगने में एक अमीन, एक शिकदार, एक कोषाध्यक्ष एवं हिसाब रखने के लिए एक हिन्दू एवं एक पारसी लेखक होते थे। अगली बड़ी इकाई सरकार में एक शिकदारे शिकदरां तथा एक मुनसिफे–मुनसिफान होते थे, जो परगने के अधिकारियों के कार्य की देखभाल करते थे।

अधिकारियों के अपने अधिकार क्षेत्रों में अनुचित प्रभाव को रोकने के लिए सुल्तान ने उन सबको हर दो या तीन वर्षों में स्थानान्तरित करने की योजना बनायी, जो उसके शासन की अल्पकालीन अवधि के कारण अधिक समय तक नहीं चल सकी। शासन के प्रत्येक विभाग की देखभाल शेरशाह स्वयं करता था। अशोक तथा हर्ष के समान वह इस सूत्र के अनुसार कार्य करता था कि ''बड़ो को सदैव क्रियाशील होना शोभा देता है।''

4.6.2 भूराजस्व सुधार :

विवेकपूर्ण एवं मानवीय सिद्धान्तों पर आधारित शेरशाह के भूमि–राजस्व सम्बन्धी सुधारों का भारत के प्रशासनिक इतिहास में अद्वितीय योगदान है क्योंकि इन्होंने भूमि और राजस्व सुधार सम्बन्धी व्यवस्था के लिए मॉडल का कार्य किया, भूमि की सावधानी के साथ जांच करके भूमि–कर किसानों के साथ सीधे निश्चित किया। राज्य की औसत उपज का चौथाई अथवा तिहाई भाग मिलता था, जो अनाज या नकद के रूप में दिया जा सकता था। नकद का तरीका बेहतर समझा जाता था। राजस्व वसूल करने के लिए सरकार ने अमीन, मुकद्दन, शिकदार, कानूनगो, पटवारी आदि अधिकारियों को नियुक्त किया था। शेरशाह ने राजस्व विभाग के अधिकारियों को आदेश दिया था कि वे कर निर्धारण के समय उदार रहें लेकिन कर वसूलने के समय सख्ती बरती जाए। रैयत के अधिकार उचित रूप में माने जाते थे। प्रत्येक को क्या देना है यह कबूलियत में स्पष्ट लिखा होता था जो सरकार उससे लेती थी तथा पट्टा राज्य द्वारा किसानों को लिखित रूप में दिया जाता था। राज्य द्वारा आपात स्थिति में करों को माफ कर दिया जाता था। सिपाहियों के पड़ाव डालने पर, काफी वर्षा न होने के कारण, फसलों का नुकसान हो जाने पर रैयतों को ऋण दिए जाते थे।

4.6.3 जनहित कार्य :

जिस क्षेत्र में जो अधिकारी था उसी का उत्तरदायित्व उस क्षेत्र में शांति स्थापित रखना था। इस प्रकार स्थानीय अपराधों के लिए स्थानीय उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को लागू किया गया। फरिश्ता ने लिखा है कि ''व्यापारी और यात्री सुरक्षा से सड़कों के किनारे रात को आराम करते थे।'' इलियट ने लिखा ''शेरशाह के समय में एक वृद्व स्त्री अपने सिर पर आभूषणों से भरी हुई टोकरी लेकर यात्रा कर सकती थी।''

स्थान–स्थान पर लिया जाने वाला कर समाप्त कर दिया गया। एक उस स्थान पर जहाँ से वस्तुएं उसके राज्य की सीमा में प्रवेश करती थीं और दूसरे उस स्थान पर जहाँ वस्तुएं बिक्री के लिए जाती थीं।

शेरशाह ने अपने समय में कई सड़कों का निर्माण कराया और पुरानी सड़कों की मरम्मत कराई। सड़कों के दोनों तरफ छायादार और फलों वाले पेड़ लगाए गए। सभी

सड़कों पर प्रायः दो–दो कोस लगभग चार किलोमीटर के फासले पर सरायों का निर्माण कराया।

4.7 शेरशाह का मूल्यांकन :

शेरशाह वास्तव में मध्यकालीन भारत के इतिहास में एक विलक्षण व्यक्तित्व हैं। केवल गुण एवं योग्यता के कारण वह एक अत्यन्त साधारण स्थिति से उन्नति कर अफगान पुनर्जागरण का नेता तथा भारतीय बड़े शासकों में से एक बन गया। उसके सैनिक चरित्र में ''सावधानी एवं साहस का अद्‌भुत संयोग'' था। उसका राजनीतिक चरित्र सामान्य रूप से न्याययुक्त एवं मानवतापूर्ण था। उसका धार्मिक रूख मध्यकालीन धर्मान्धता से मुक्त था। इमारतें बनाने में उसकी रूचि का उत्तम प्रमाण आज भी सासाराम में उसके उत्कृष्ट मकबरे के रूप में मौजूद है। उसने अपना अथक परिश्रम और प्रयास राज्य की सेवा में लगाए। उसके सुधार जनता के लिए कल्याणकारी थे। निसंदेह उसके राज्य का वास्तविक महत्व इस बात में है कि उसमें वे ही गुण थे जिनकी भारत में एक राष्ट्रीय राज्य बनाने में आवश्यकता होती है। उसने कई प्रकार से अकबर के गौरवपूर्ण राज्य के लिए क्षेत्र तैयार कर दिया था। स्मिथ कहता है ''यदि शेरशाह बचा रहता, तो इतिहास के रंगमंच पर महान मुगल न आए होते।''

वूल्जले हेग ने कहा है– ''वह भारत के मुसलमान शासकों में सर्वश्रेष्ठ था।'' ए0एल0 श्रीवास्तव अकबर के बाद उसे स्थान प्रदान करते हैं। इस प्रकार शेरशाह की मुख्य सफलताएँ अफगानों को एकत्रित करना, राजवंश से सम्बन्धित न होते हुए केवल अपनी योग्यता से राजपद को प्राप्त करना और उस राज्य का श्रेष्ठ शासन प्रबन्ध करना था जिसके लिए शेरशाह भारतीय इतिहास में अविस्मरणीय है।

4.8 सारांश :

अपनी मृत्यु के समय तक शेरशाह ने गुजरात, असम और कश्मीर को छोड़कर उत्तरी भारत में प्रायः सम्पूर्ण भू–प्रदेश पर अपनी सत्ता स्थापित करने में सफलता पाई। एक मामूली जागीरदार के पुत्र की स्थिति से उठकर शेरशाह ने सुल्तान का पद प्राप्त किया और एक विस्तृत साम्राज्य स्थापित किया। अफगान शासकों में श्रेष्ठता प्रदान करने के लिए शेरशाह का एक यही कार्य पर्याप्त था। परन्तु शेरशाह की योग्यता इससे भी अधिक थी। वह एक महान शासक प्रबन्धक भी सिद्ध हुआ। अतः उसे मध्य–युग के श्रेष्ठ शासकों में से एक माना जाता है।

4.9 अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. शेरशाह के जीवनवृत और उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

2. ''शेरशाह एक महान विजेता ही नहीं, अपितु प्रशासक भी था।'' इस कथन की समीक्षा कीजिए।
3. शेरशाह के साम्राज्य विस्तार पर एक लेख लिखिए।
4. शेरशाह की प्रमुख विजयों का वर्णन कीजिए।
5. शेरशाह की भूराजस्व व्यवस्था पर निबन्ध लिखिए।

बोध–प्रश्न :

निम्नलिखित कथनों को पढ़कर सही (√) एवं गलत (x) के चिह्न लगाओ–

(i) शेरशाह एक अफगान था। ( )

(ii) शेरशाह के बचपन का नाम फरीद था। ( )

(iii) शेरशाह एक कुशल शासन प्रबन्धक नहीं था। ( )

(iv) शेरशाह ने हुमायूँ को कन्नौज और चौसा के युद्ध में पराजित किया था। ( )

4.10 शब्दावली:

खुत्बा–विशेष अवसरों पर सम्बोधन, जिसमें ईश्वर की स्तुति तथा मुहम्मद साहब की प्रशंसा के बाद तत्कालीन बादशाह का वर्णन होता था।

पट्टा– राज्य द्वारा राजस्व देने वाले के लिए दिया गया दस्तावेज़।

कुबुलियत–राजस्व अदा करने के लिए दिया गया लिखित वचन।

4.11 बोध–प्रश्नों के उत्तर : (i) √ (ii) √ (iii) x (iv) √

4.12 सहायक ग्रन्थ:

1 Farishta : Tarikh-e-Farishta (Translated into English by Briggs)

2 Qanungo, K.R. : Sher Shah (1920)

3 Srivastava, A.L. : Sher Shah and His Successors

4 Banerji, S.K. : Humayun Badshah, Vol. I & II

इकाई पंचम– सूरवंश का पतन, मुगलों की पुर्नस्थापना

इकाई की रूपरेखा :

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 शेरशाह के उत्तराधिकारी

5.2.1 इस्लामशाह

5.2.2 फीरोजशाह

5.2.3 मुहम्मद आदिलशाह और सूर साम्राज्य का विघटन

5.3 सूरवंश के पतन के कारण

5.3.1 प्रशासकीय कठिनाईयां

5.3.2 इस्लामशाह का उत्तरदायित्व

5.3.3 इस्लामशाह के अयोग्य उत्तराधिकारी

5.3.4 अफगानों की स्वतन्त्रता एवं संघर्ष की प्रवृत्ति

5.4 मुगलों की पुनर्स्थापना

5.4.1 मच्छीवारा का युद्ध

5.4.2 सरहिन्द की लड़ाई

5.5 सारांश

5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.7 बोध–प्रश्नों के उत्तर

5.8 सहायक ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे–

- शेरशाह के उत्तराधिकारियों के विषय में।
- सूर साम्राज्य के विघटन की प्रक्रिया को।
- सूरवंश के पतन के कारणों के सम्बन्ध में।
- मुगलों के भारत वापसी और पुनर्विजय अभियान के विषय में।

5.1 प्रस्तावना :

शेरशाह का अंतिम अभियान कालिंजर के चंदेलों के विरूद्ध था। कालिंजर का घेरा लगभग तीन माह तक चला। इसी दौरान शेरशाह बुरी तरह घायल हो गया किंतु

मृत्यु से पूर्व शेरशाह को जीत का समाचार मिल गया था। शेरशाह की मृत्यु से उन प्रवृत्तियों को पुनः उभरने का अवसर मिला जिन्हें उसने अपनी राजनीतिक सूझबूझ और राजकौशल से नियन्त्रित कर रखा था। उसने एक विस्तृत साम्राज्य का निर्माण किया था लेकिन उसके किसी भी उत्तराधिकारी में उस जैसी राजनीतिक समझदारी नहीं थी।

5.2 शेरशाह के उत्तराधिकारी :

शेरशाह द्वारा निर्मित अफगान साम्राज्य उसकी मृत्यु के पश्चात अधिक समय तक न टिक सका। उसके प्रबल व्यक्तित्व के लुप्त होने तथा उसके उत्तराधिकारी की दुर्बलता के कारण अफगान सरदारों में पुनः द्वेष और कलह आरम्भ हो गया। जिससे सम्पूर्ण राज्य अराजकता की गोद में डूब गया और इस प्रकार मुगलों के पुनरुत्थान का रास्ता भी साफ हो गया।

5.2.1 इस्लामशाह (1545–1553) :

जिस समय शेरशाह की मृत्यु हुई, उसके दोनों पुत्रों में से कोई भी उसके निकट न था। शेरशाह ने अपने बड़े पुत्र आदिल खाँ को उत्तराधिकारी नियुक्त किया था परन्तु बहुत से सरदारों ने जलाल खाँ को बादशाह बनाना उपयुक्त समझा क्योंकि आदिल खाँ विलासी और आवारा था, जबकि जलाल खाँ परिश्रमी और योग्य सेनापति था। जलाल खाँ को शीघ्र बुलाने के लिए दूत भेजा गया और उसके आने पर 26 मई, 1545 को उसे इस्लामशाह के नाम से सुल्तान घोषित कर दिया गया। उसे सलीमशाह के नाम से भी जाना जाता है।

आदिलखाँ की उपस्थिति उसके लिए खतरा बनी हुई थी। अतः उसने आदिल खाँ को पत्र लिखकर आगरा आने के लिए निमंत्रित किया। आदिलखाँ इस शर्त पर आगरा आने के लिए तैयार हुआ कि ख़वास खाँ, इस्लाम खाँ नियाज़ी और जलाल खाँ जोलवानी जैसे सरदार उसकी जान की हिफाजत का जिम्मा लें। इसका वादा किया गया किंतु साथ ही इस्लामशाह ने अपने भाई की हत्या की योजना भी बनाई जो असफल रही। विवश होकर आदिल खाँ ने सुल्तान के सम्मुख समर्पण कर दिया। उसे ब्याना का सूबेदार नियुक्त कर दिया गया और ख़वास खाँ एवं ईसा खाँ को अनुरक्षकों के रूप में उसके साथ भेजा गया।

इस्लामशाह अपने मन में निरंकुश राजसत्ता की भावना धारण किए हुए था। उसका विचार था कि जब तक उसका भाई जीवित है, वह अपने विचारों और नीतियों को कार्यरुप में परिणित नहीं कर सकेगा। किंतु भाई को मरवा डालने के निर्णय ने ही साम्राज्य में गृह–युद्ध की स्थिति उत्पन्न कर दी। पुराने अफगान सरदारों की निष्ठा पर

संशय करके उन्हें मरवा डाला गया। इससे साम्राज्य उन स्तम्भों से वंचित हो गया जो उसे संभाले हुए थे।

अपने समय में इस्लामशाह सफल रहा। उसने न केवल राज्य की सुरक्षा ही की बल्कि उसका विस्तार भी किया। पूर्वी बंगाल को उसके समय में विजय किया गया। उसके समय के सभी विद्रोह असफल हुए और 1553 में जब हुमायूँ ने सीमा पर आक्रमण किया तब बीमारी की दशा में भी इस्लाम शाह युद्ध के लिए चल दिया और हुमायूँ को वापस लौटना पड़ा। उसके समय में उसका भय और सम्मान था और उसके आदेशों का अक्षरशः पालन किया जाता था। शासन व्यवस्था में उसने विभिन्न सुधार किए जिनमें से अनेक लाभदायक भी थे। परन्तु इस्लामशाह अधिक समय तक जीवित न रह सका। बीमारी के कारण 30 अक्टूबर, 1553 को उसकी मृत्यु हो गयी।

5.2.2 फीरोजशाह (1553) :

इस्लामशाह की मृत्यु होते ही सूर–साम्राज्य की एकता नष्ट हो गयी और उसके पतन का मार्ग खुल गया। इस्लामशाह के पश्चात उसका 12 वर्ष का पुत्र फीरोजशाह गद्दी पर बैठा। परन्तु तीन दिन के पश्चात ही उसके मामा मुवारिज खाँ ने उसकी हत्या कर दी।

5.2.3 मुहम्मद आदिलशाह और सूर साम्राज्य का विघटन :

फिरोजशाह का मामा मुवारिज खाँ उसकी हत्या करके गद्दी पर बैठा और मुहम्मद आदिलशाह (1553–1557 ई.) की उपाधि ग्रहण की। आदिलशाह ने सिहांसन पर नाजायज तरीके से अधिकार किया था और वह अयोग्य भी था। अफगानों की स्वतन्त्रता और शक्ति संघर्ष की भावना को इससे खुला मार्ग मिल गया तथा विभिन्न सरदारों ने विद्रोह करने आरम्भ कर दिए। शुरूआत में आदिलशाह ने कुछ सफलता प्राप्त की परन्तु वह साम्राज्य के विभाजन को रोकने में असफल रहा। उसी के बहनोई इब्राहिम सूर ने दिल्ली और आगरा पर अधिकार करके स्वयं को इब्राहीम शाह के नाम से बादशाह घोषित कर दिया। उस समय आदिलशाह चुनार में था और उसका मुख्य सहायक और सेनापति हेमू पूरब में युद्ध करने गया हुआ था। इस कारण, आदिलशाह कुछ न कर सका। इसी घटना से आदिलशाह के एक अन्य बहनोई अहमद खाँ को प्रोत्साहन मिला। वह पंजाब का सूबेदार था। उसने अपने आपको सिकन्दरशाह के नाम से स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया।

इसी प्रकार बंगाल में मुहम्मद खाँ सूर ने और मालवा में बाज़बहादुर ने अपने आपको स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। कुछ समय पश्चात ही सिकन्दरशाह ने दिल्ली तथा आगरा पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार सूर–साम्राज्य पाँच भागों में बँट गया।

सिकन्दरशाह के अधिकार में पंजाब, दिल्ली और आगरा थे, इब्राहीम का अधिकार दोआब और सम्भल पर था, चुनार से बिहार तक आदिलशाह का अधिकार था, बंगाल में मुहम्मदशाह का अधिपत्य था और मालवा में बाज़बहादुर की स्वतन्त्र सत्ता थी। इनमें से प्रत्येक शासक सम्पूर्ण सूर–साम्राज्य को अपने अधिकार में करने के लिए प्रयत्नशील था।

ऐसी परिस्थिति में जबकि सूर–साम्राज्य छिन्न–भिन्न हो गया था और विभिन्न सूर सरदार आपस में संघर्ष कर रहे थे, हुमायूँ ने भारत पर आक्रमण किया। हुमायूँ पुनः सत्ता प्राप्त करने में सफल हुआ।

5.3 सूरवंश के पतन के कारण :

शेरशाह सूर ने 1540 ई0 में जिस साम्राज्य की स्थापना की थी, वह मात्र पन्द्रह वर्ष ही चल पाया। इसके पतन के प्रमुख कारण थे–

5.3.1 प्रशासकीय कठिनाइयां :

निःसन्देह शेरशाह ने अपने अल्प–शासनकाल में एक श्रेष्ठ शासन की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी इस्लामशाह ने भी उसकी शासन व्यवस्था को बनाए रखा। परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात सिंहासन को प्राप्त करने के लिए अफगानों में पारस्परिक संघर्ष आरम्भ हो गया इससे वह व्यवस्था नष्ट हो गई। इसके अतिरिक्त मुख्य कठिनाई आर्थिक हुई। अफगान साम्राज्य विभाजित हो जाने के कारण दिल्ली के शासक सिकन्दरशाह के पास पर्याप्त सैनिक साधन भी उपलब्ध नहीं हो सके। ऐसी स्थिति में मुगल सेना, अफगान सेना से श्रेष्ठ सिद्ध हुई।

5.5.2 इस्लामशाह का उत्तरदायित्व :

इस्लामशाह, शेरशाह का योग्य उत्तराधिकारी था। परन्तु उसी के शासनकाल में अफगानों में आपस में तीव्र विभाजन हो गया। इस्लामशाह ने अपने भाई आदिल खाँ की शक्ति को समाप्त करके साम्राज्य के विभाजन को तो बचा लिया, परन्तु अफगानों की एकता को नष्ट कर दिया। वह अपने सरदारों के प्रति शंकालु हो गया और उनमें से कई सरदारों को उसने मरवा भी दिया। इसी कारण, उसके विरूद्ध विद्रोह हुआ। वह उस विद्रोह को दबाने में सफल हुआ परन्तु अफगान सरदारों की वफादारी प्राप्त करने में असफल हुआ। अपने समय में वह अफगानों की स्वतन्त्र प्रकृति पर अंकुश लगाने में सफल रहा परन्तु उसे नष्ट नहीं कर सका और उसकी मृत्यु हो गयी जबकि उसका पुत्र और उत्तराधिकारी फीरोज अल्पायु था।

5.3.3 इस्लामशाह के अयोग्य उत्तराधिकारी :

इस्लामशाह का उत्तराधिकारी उसका अल्पायु पुत्र फीरोज था जिसको तीन दिन पश्चात ही उसके मामा मुवारिज खाँ ने मरवा दिया और आदिलशाह के नाम से स्वयं

सुल्तान बन गया। परन्तु आदिलशाह अयोग्य सिद्ध हुआ। इसी प्रकार इब्राहीम शाह और सिकन्दरशाह जिन्होंने क्रमशः दिल्ली और आगरा पर अपना अधिकार स्थापित किया, अयोग्य सिद्ध हुए। उनमें से कोई भी अफगान साम्राज्य के विघटन को रोकने में सफल नहीं हुआ और सूर–साम्राज्य खण्डित हो गया।

5.3.4 अफगानों की स्वतन्त्रता एवं संघर्ष की प्रवृत्तिः

द्वितीय अफगान साम्राज्य अर्थात सूर वंश के पतन का कारण अफगानों का केन्द्रीय शासन व्यवस्था को स्वीकार न करना था। अफगान आवश्यकता से अधिक अपने अधिकारों की स्वतन्त्रता पर बल देते थे जिसके कारण वे एक सुल्तान के शासन के अधीन रहना पसन्द नहीं करते थे। सुल्तान उन्हें अपने नियंत्रण में रखने के लिए शक्ति के आधार पर बाध्य तो कर सकता था परन्तु उनकी स्वतन्त्रता की भावना पर स्थायी अंकुश नहीं लगा सकता था। इस कारण सुल्तान के दुर्बल होते ही या उनके अयोग्य होने पर उनकी स्वतन्त्रता की महत्वकांक्षाएं सम्मुख आ जाती थीं। इस प्रकार वे परस्पर संघर्ष में फंस जाते थे। लोदी वंश के पतन का भी यह प्रमुख कारण था।

इस प्रकार शेरशाह द्वारा स्थापित वंश और व्यवस्था जिसे उसने अपनी योग्यता के बल पर सफलता के चरम बिन्दु पर पहुँचाया था पंद्रह वर्षों के अन्दर ही धराशायी हो गया।

5.4 मुगलों की पुनर्स्थापना :

हुमायूँ के प्रबल प्रतिद्वन्दी शेरशाह ने उसे हिन्दुस्तान से निकालकर वहाँ एक शक्तिशाली राज्य स्थापित कर लिया था लेकिन मई 1545 ई0 में शेरशाह की मृत्यु हो गयी। उसके पश्चात उसका पुत्र इस्लामशाह तख़्त पर बैठा किन्तु वह अफगान सरदारों को अपने बस में नहीं रख सका और जब 30 अक्टूबर, 1553 ई0 को उसकी मुत्यु हुई, तो अफगान साम्राज्य पतन के पथ पर जा रहा था।

इस्लामशाह के पुत्र फीरोजशाह की हत्या करके उसके मामा मुवारिज खाँ ने मुहम्मद आदिलशाह की उपाधि ग्रहण की और गद्दी पर अधिकार कर लिया। वह अयोग्य और विलासी सिद्ध हुआ जिससे उसके विरूद्ध विद्रोह हुए। लाहौर में सिकन्दरशाह ने, बयाना में इब्राहीमशाह ने, बंगाल में मुहम्मदशाह ने स्वयं को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। दिल्ली पर पहले अहमदशाह ने और फिर सिकन्दरशाह ने अपना अधिकार कर लिया। ऐसी स्थिति में जबकि अफगानों में संघर्ष चल रहा था, हुमायूँ ने पुनः भारत पर आक्रमण किया।

5.4.1 मच्छीवारा का युद्ध (15 मई, 1555 ई0)

जब हुमायूँ ने सिंधु नदी पार की तो उसका विश्वास पात्र बैरम खाँ अन्य सैनिक अधिकारियों के साथ उससे आ मिला। परहाला के रास्ते चलकर हुमायूँ पूर्वी पंजाब के गुरूदासपुर जिले में कलानूर नामक स्थान पर आ पहुँचा। यहाँ पर उसने अपनी फौज को तीन भागों में विभाजित किया। उसमें से एक को उसने शिहाबुद्दीन के नेतृत्व में लाहौर भेजा और दूसरे को बैरम खाँ तथा अन्य सरदारों के साथ नसीब खाँ अफगान से मोर्चा लेने भेजा। नसीब खाँ के अधिकार में हरियाणा का इलाका था। लाहौर बिना किसी संघर्ष के मुगलों के अधिकार में आ गया। 24 फरवरी, 1555 ई0 में हुमायूँ भी यहाँ चला आया और विजित क्षेत्रों के प्रबन्धन में लग गया। मुगलों ने दीपालपुर पर अधिकार कर लिया, उधर बैरम खाँ ने नसीब खाँ को खदेड़कर हरियाणा के परगने पर अधिकार कर लिया। वहाँ से बैरम खाँ तथा अन्य सरदार लुधियाना से 19 मील पूर्व सतलज के किनारे मच्छीवारा नामक स्थान के लिए चल दिए। यहाँ मुगलों का अफगानों से डटकर मुकाबला हुआ। अफगान फौजों का नेतृत्व नसीब खाँ, तातार खाँ आदि सरदारों के हाथ में था। घमासान युद्ध (15 मई, 1555 ई0) आधी रात से ऊपर चलता रहा। मुगलों को विजयश्री हाथ लगी और अफगानी सैनिक युद्ध क्षेत्र से भाग खड़े हुए। बैरम खाँ ने सरहिंद अधिकृत करने की शीध्र ही तैयारी कर डाली।

5.4.2 सरहिन्द की लड़ाई (22 जून 1555 ई0) :

मच्छीवारा की लड़ाई के फलस्वरुप मुगलों ने लगभग सम्पूर्ण पंजाब पर अपना अधिकार कर लिया। अफगानों में अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने वाला सिकन्दर सूर दिल्ली से बड़ी सेना लेकर चला, क्योंकि इस बार और कड़ी मुठभेड़ की आशंका थी, इसलिए बैरम खाँ की प्रार्थना पर लाहौर से हुमायूँ भी उसके साथ आ मिला। सरहिन्द के निकट दोनों फौजों में भयंकर लड़ाई छिड़ गई, यह दिन 22 जून 1555 ई0 का था। सिकन्दर को बुरी तरह खदेड़ दिया गया। सिकन्दर सूर पंजाब की पहाड़ियों में जा छिपा। सरहिन्द का युद्ध निर्णायक सिद्ध हुआ। अफगानों ने भारत की सत्ता को सदैव के लिए खो दिया। हुमायूँ ने आगे बढ़कर दिल्ली पर अधिकार कर लिया। आगरा, सम्भल और आस–पास के क्षेत्रों पर भी मुगलों का अधिकार हो गया। अफगान शक्ति बिखर गई।

5.5 सारांशः

शेरशाह की मृत्यु से उन प्रवृत्तियों को पुनः उभरने का अवसर मिला जिन्हें उसने अपनी राजनीति सूझबूझ और राजकौशल से नियन्त्रित कर रखा था। उसके किसी भी उत्तराधिकारी में उस जैसी राजनीतिक समझदारी नहीं थी। इस कारण शेरशाह की मृत्यु के पश्चात ही अफगाान शक्ति में बिखराव उत्पन्न हो गया। शेरशाह ने जिस साम्राज्य

को अपनी योग्यता और क्षमता के बल पर खड़ा किया था, उसके उत्तराधिकारियों ने कुछ वर्षों में ही खो दिया। अफगान साम्राज्य आपसी अन्तर्कलह और अयोग्यता की भेंट चढ़ गया। ऐसे में हुमायूँ ने मुगलों की शक्ति को पुनः एकत्रित किया तथा परिस्थितियों का लाभ उठाकर भारत पुनर्विजय अभियान को पूर्ण किया। इस प्रकार अफगान साम्राज्य का अंत हो गया और अफगाान शक्ति पर एक बार फिर मुगल शक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध हुई।

5.6 अभ्यासार्थ प्रश्नः

1. इस्लामशाह की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।
2. सूर वंश के पतन के कारण लिखिए।
3. मुगलों की भारत पुनर्विजय अभियान पर एक लेख लिखिए।
4. मच्छीवारा के युद्ध की महत्वता पर प्रकाश डालिए।
5. सूर वंश के पतन में उसके अयोग्य उत्तराधिकारियों का उत्तरदायित्व निश्चित कीजिए।

बोध–प्रश्न :

निम्नलिखित कथनों को पढ़कर सही (√) एवं गलत (x) के चिह्न लगाओ–

(i) शेरशाह के उत्तराधिकारी दुर्बल थे। ( )

(ii) सूरवंश के पतन में एक प्रमुख कारक अफगानों की स्वतंत्रता की प्रवृत्ति थी। ( )

(iii) मच्छीवारा के युद्ध में मुगलों की पराजय हुई। ( )

(iv) हुमायूँ मुगलों को भारत में पुर्नस्थापित नहीं कर सका। ( )

5.7 बोध–प्रश्नों के उत्तर : (i) √ (ii) √ (iii) x (iv) x

5.8 सहायक ग्रन्थ :–

1. Prasad, Isnwari : Humayun and His Times.
2. Srivastava, A.L. : Sher Shah and His Successors.
3. Erskine, W. : History of India under Babar and Humayun, Vol.- I & II (1884)
4. Jauhar : Tazkirat-ul-Waqayat (Translated into English by C. Stewart).
5. Bhartiya Vidhya Bhawan : The Mughal Emprer.